चन्दामामा
अक्तूबर १९८८
2.50 RS

बाल फेंकों जिससे तुम्हें ज़्यादा से ज़्यादा अंक मिलें. यह खेल तुम अकेले या अपने कई दोस्तों के साथ खेल सकते हो. हर खिलाड़ी एक बारी में तीन बार बॉल फेंक सकेगा. जिसे सबसे पहले १०० पॉइंट मिलेंगे वह जीत जाएगा.

ी!

ी')
के साथ
से तुम
तुम्हें कई
लो.

मज़े-मज़े की लंबी मूंछें

मसुरीआ नाम के एक भारतीय की मूंछ दुनिया भर में सबसे लंबी है. यह २५९ सें.मी. लंबी मूंछ (दुनिया के सबसे लंबे आदमी से भी ज़्यादा लंबी है.) उसे यह मूंछ बढ़ाने में १३ साल लगे.

पापा के लिए 'बुक मार्क'

यह चित्र (चित्र नं-२) एक कागज पर खींचो. उसमें रंग भरो. फिर उसे एक मोटे कागज पर चिपकाओ और चित्र के आकार का काट लो. अगर तुम्हारे पास अपनी खुद की कोई और तस्वीर हो तो उसे भी आकार के मुताबिक काटो और वही तरीका अपनाओ. तुम्हारा 'बुकमार्क' तैयार हो गया. किताब या पत्रिका में रख दो जिसे पापा अब इसे उस पढ़ रहे हों. पापा खुश हो जायेंगे.

2

म्यांऊ, म्यांऊ

एक नाव पर १० बिल्लियां थी. एक गिर पड़ी. बाकी कितनी बची? जवाब – एक भी नहीं, क्योंकि वह सब नकलची 'कॉपीकैट' (Copycats) थीं.

चन्दामामा

अक्तूबर 1988

विषय-सूची

★

एक प्रति : २-५०

वार्षिक चन्दा : ३०-००

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

प्रारब्ध और दुर्भाग्य समाज के व्यक्तियों की परिस्थितियों पर आधारित होते हैं। अगर किसी महाराजा को एक क़ीमती रत्न प्राप्त हुआ तो वह प्रारब्ध नहीं कहलाएगा। उसके ख़ज़ाने में होनेवाले कई रत्नों में एक की क्या गिनती ? मगर वही रत्न किसी ग़रीब को प्राप्त हो गया, तो वह उसके लिए बड़े भाग्य की बात है। क्योंकि उसने कभी रत्न ही नहीं देखा ! 'नाक़ाबिल की क़िस्मत' शीर्षक कहानी में यही तथ्य अच्छे ढंग से स्पष्ट किया गया है।

अमर वाणी

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं, गृहमागते,
छेतुः पार्श्वगतां, छायां नोपसंहरते द्रुमः ।

[शत्रु भी क्यों न हो, यदि वह घर में अतिथि बनकर आ जाता है तो उसका आदर करना चाहिए। वृक्ष उस व्यक्ति को भी छाया प्रदान करता है जो उसको काटने आता है।]

वर्ष : ४१ अक्तूबर १९८८ अंक : २

एक प्रति : २.५० :: वार्षिक चन्दा : ३०.००

अपने शिशु को दीजिए सैरेलॅक का अनूठा लाभ

कीजिए ठोस आहार की आदर्श शुरुआत

४ महीने की उम्र से आपके शिशु को दूध के साथ-साथ ठोस आहार की भी ज़रूरत होती है. उसे सैरेलॅक का अनूठा लाभ दीजिए.

पौष्टिकता का लाभ : सैरेलॅक का प्रत्येक आहार आपके शिशु को आवश्यकता के अनुसार सारे पौष्टिक तत्व प्रदान करता है — प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फैट, विटामिन तथा मिनरल, सभी पूरी तरह संतुलित.

स्वाद का लाभ : शिशुओं को सैरेलॅक का स्वाद बहुत भाता है.

समय का लाभ : सैरेलॅक पहले से ही पकाया हुआ है और इसमें दूध और चीनी मौजूद है. केवल इसे उबाले हुए गुनगुने पानी में मिला दीजिए.

पसंद का लाभ : तीन तरह के सैरेलॅक में से आप अपनी पसंद का चुन सकती है.

कृपया डिब्बे पर दिए गए निर्देशों का सावधानी से पालन कीजिए ताकि इसके बनाने में स्वच्छता रहे और आपके शिशु को संतुलित पोषाहार मिले.

मुफ्त! सैरेलॅक बेबी केयर बुक
लिखिये : सैरेलॅक, पोस्ट बॉक्स नं. 3
नई दिल्ली-110 008

सैरेलॅक का वादा: स्वाद भरा संपूर्ण पोषाहार

RK SWAMY/FSL/5112/HIN

चंदामामा के संवाद

अंधों का पर्वतारोहण

हाल ही में शहर के दो दृष्टिहीन युवकों ने हिमालय के १६०० फुट ऊँचे पटालस पर्वत का आरोहण किया। दत्तात्रय तथा मोहन कांबले नाम के इन दो अंध युवकों ने तीन अन्य व्यक्तियों की सहायता से पर्वत का आरोहण करके हमारे देश में एक नया प्रतिमान स्थापित किया है।

राक्षस छिपकलियों का कैसे नाश हुआ ?

६० मिलियन वर्ष पूर्व पृथ्वी-तल पर रहनेवाली डिनोजार्स नामक राक्षस छिपकलियाँ यकायक कैसे लुप्त हो गईं ? वैज्ञानिकों ने अनुसंधान कर इस बात पर एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। वह बताता है कि अग्नि-पर्वतों के विस्फोट के कारण सूर्य गोल बंद हो गया है। उसके फल-स्वरूप अनेव भौगोलिक परिवर्तन हुए हैं। उस समय जो 'आम्ल वर्षा' हुई, उसके शिकार होकर संभवतः राक्षस छिपकलियाँ नष्ट हो गईं हैं।
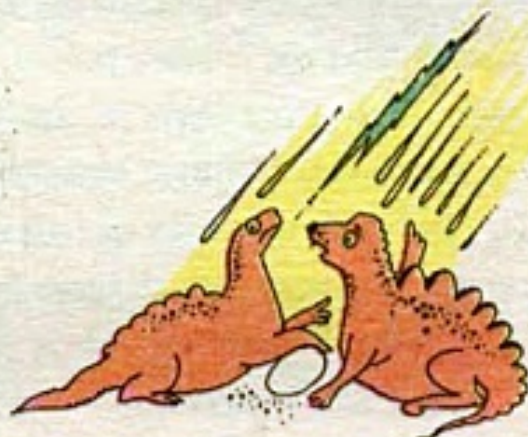
एक हज़ार वर्ष पुरानी पाकशाला

पुरी के जगन्नाथ मदिर की पाकशाला हर रोज़ हज़ारों लोगों का खाना तैयार करती है। कहा जाता है, गत हज़ार वर्षों से उपयोग में आनेवाली यह पाकशाला दुनिया की सारी पाकशालाओं में अत्यन्त प्राचीन है।

परिभ्रमण की गति

हाल ही में वैज्ञानिकों ने अंतरिक्ष में शीघ्र गति से परिभ्रमण करनेवाले एक दूसरे नक्षत्र का पता लगा दिया है। १६ कि. मि. चौड़ा यह नक्षत्र प्रति १.६ मिलि-सेकण्ड में एक बार परिक्रमा करता है। मिलि-सेकण्ड का मतलब है एक सेकण्ड का सहस्रवाँ हिस्सा।

शिरच्छेद

किसी एक देश का राजा एक अनोखी बीमारी से बुहत दिन पीडित रहा। कई वैद्यों ने उसका इलाज किया, पर बीमारी बनी ही रही। इस पर राजा बहुत निराश हुआ और उसने घोषणा की— "जो व्यक्ति मुझे स्वस्थ बनाएगा उसको मेरा आधा राज्य मैं दूँगा। मगर जो लोग मेरा इलाज करनेका आश्वासन देकर मुझे स्वस्थ न बना पायेंगे, उनका शिरच्छेद किया जाएगा।"

इस घोषणा को सुनकर आधे राज्य के लोभ में जो वैद्य राजा का इलाज करने पहुँचे, वे राजा को स्वस्थ न बना पाए और अपने प्राण खो बैठे। इस स्थिति को देख कर एक वैद्य के मन में यह शंका पैदा हुई कि इस प्रकार वैद्यों का अंत होता रहेगा तो देश के रोगियों का इलाज कौन करेगा ?

उसने जाकर राजा से निवेदन किया— "महाराज, मैं यह दाँव लगाता हूँ कि मैं आप की व्याधि को निश्चय ही दूर करूँगा, बशर्ते कि आप भी मेरे एक दाँव को स्वीकार कर लें!"

राजा ने वैद्य से पूछा— "बताओ भला, तुम्हारा दाँव क्या है ?"

"सिर का दाँव महाराज, सिर का! यदि मैं आपको व्याधि-मुक्त न कर सका तो आप मेरा सर काट देंगे। पर यदि मैं ने आपकी व्याधि का निवारण किया तो आप को अपना सर देना पड़ेगा। बस, यही मेरा दाँव है।"—वैद्य ने अपनी शर्त राजा के सामने रखी।

राजा ने क्रोध में आकर पूछा— "यदि मैं स्वस्थ हो आऊँ तो मुझे क्यों शिरच्छेद करवाना है ?"

वैद्य ने राजा से नम्रतापूर्वक निवेदन किया— "महाराज, अगर मैं आप की व्याधि को दूर न कर सका तो जैसे आप मेरा सिर कटवायेंगे, वैसे अगर मैं आप की व्याधि का निवारण कर सका तो आप के शिरच्छेद की माँग क्यों नहीं कर सकता ? यह सर्वथा न्यायोचित नहीं है क्या ?"

राजा वैद्य के सवाल का अर्थ भली भाँति समझ गया। उसने तुरन्त शिरच्छेदवाली अपनी घोषणा को रद किया। फिर वैद्य ने राजा का इलाज करके उसे स्वस्थ बनाया। राजा ने उसकी भूरि भूरि प्रशंसा की।

बन्दर के हाथ में हीरा

एक दिन कड़ी दुपहरिया में एक युवक जंगल में अपनी भेड़ें चरा रहा था। चरवाहे का नाम था भैरव। अचानक उसकी एक परमप्यारी मेमना रेवड़ से खिसककर कहीं दूर चली गयी। भैरव उसकी खोज करते करते एक गुफ़ा तक जा पहुँचा। गुफ़ा को एक चट्टान घेरे हुए था। फिर भी उसकी एक तरफ़ एक मनुष्य के घुसने लायक एक छेद था।

गुफ़ा के सामने भैरव ने भेड़ के पदचिन्ह देखे। उसने सोचा कि, मेमना गुफ़ा के अन्दर चली गयी होगी। बड़ी निड़रता से वह उस छेद में से गुफ़ा के अन्दर पहुँचा। मगर वहाँ का दृश्य देखकर वह भयकंपित हो उठा।

गुफ़ा के बीच एक ऊँची शिलापर योगासन की मुद्रा में एक मनुष्य का कंकाल बैठा हुआ था उसे देखकर भैरव पहले घबरा गया। उसके रोंगटे खड़े हो गये। पर थोड़ी ही देर में वह सम्हल गया। उसने एक बार कंकाल की ओर देखा, एक बार चारों तरफ़ नज़र दौड़ायी। उसके दोनों तरफ़ दण्ड व कमंडलु थे। भैरव ने सोचा कि कोई मुनि तप करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ होगा।

उसी समय प्यास से उसे घुटन होने लगी। उसने आगे पीछे कुछ भी न सोचकर कमण्डलु का पानी पी डाला। इसके बाद उसने चारों तरफ़ देखा, तो गुफ़ा के एक कोने में खड़ी उसकी भेड़ को उसने देखा।

भैरव भेड़ को उठाकर गुफ़ा से बाहर निकला और अपने रेवड़ की ओर चल पड़ा। चलते चलते उसके पैर में एक काँटा गड़ गया। पीड़ा से वह ज़ोर से चीख पड़ा, "उफ़ !" मगर अरे, ये क्या हुआ ? वह तो जन्म से ही गूँगा था ! अपने कण्ठ से आवाज़ फूटती देख खुशी से वह नाच उठा।

उर्मिला मिथुन

पर रेवड़ के समीप पहुँचते पहुँचते उसने देखा कि, उसकी उस मेमना की पूँछ गायब है ! वह मन ही मन दुखी होकर बुदबुदाया, "काश, मेरी मेमना की तरह भी सभी भेड़ों की पूँछें गायब हो जायँ !"

सन्ध्या-समय तक अपने रेवड़ के साथ वह घर पहुँचा । सबेरा होते होते गाँव के लोगों ने देखा कि उस गाँव की सभी भेड़ों की पूँछें गायब हैं ! सब आश्चर्य में आ गये । अब भैरव ने भाँप लिया कि बोलने के साथ ही साथ, उसे अपने मुँह से निकली हर इच्छा तत्काल सफल होने की शक्ति भी प्राप्त गयी है ।

छोटे से गाँव में ऐसी बात फैलते कितनी देर ? गाँव के सभी चरवाहे भैरव के पास दौड़े आये और कहने लगे, "भैरव, तुम यह इच्छा क्यों नहीं करते, कि तुम्हारी मेमना के साथ सभी भेड़ों को फिरसे पूँछ उगे ? कम से कम बित्तेभर की पूँछ तो होनी ही चाहिये । और नहीं तो भेड़ों के इन रेवड़ों को खरीदेगा कौन ? तुम्हीं बोलो ना !"

इसपर अपनी वाणी की शक्ति के प्रभाव से भैरव ने सभी भेड़ों के पूँछें उगवा दी ।

उसी दिन रात को गाँव के ज़मीनदार के दिवान के अनुचर भैरव के घर पहुँचे और उसको दिवान के घर बुला ले गये । दिवान ने अच्छी तरह से उसका स्वागत-सत्कार किया और बाद में अपनी इच्छा प्रकट की, "सुनो भैरव ! तुम मेरे मन की एक इच्छा पूरी करो, तो मैं तुम को मुँह माँगा धन दूँगा । तुम अभी ऐसी कामना करो कि यह कम्बख़त ज़मीनदार सबेरा होने के पूर्व ही किसी जादू की बीमारी से मर जाये । अन्य किसी प्रकार उसका अन्त करना मेरे लिये संभव नहीं हो पा रहा है । तुम अगर यह काम सफल करोगे, तो उस लावारिस ज़मीनदार का उत्तराधिकारी मैं ही बन जाऊँगा ।"

दिवान की इच्छा जानकर भैरव भयभीत हो गया । बेचारे ज़मीनदार का इस तरह अन्त क्यों किया जाय ? मगर भैरव से ज़बरदस्ती यह काम संपन्न करने के लिये दिवान ने उस को एक कोठरी में बन्द कर रखा ! वैसे उस कोठरी से बाहर निकलने की शक्ति तो भैरव रखता था, मगर वह इतना भोला था कि यह बात उसके

ध्यान में ही नहीं आयी और सबेरा होने तक वह उसी कोठरी में बन्द रहा ।

सबेरा होते ही दिवान के वे अनुचर आ पहुँचे और कोठी के किवाड़ खोल कर बोले, "भैरव, दिवान खुद ज़मीनदार साहब को मरवा डालना चाहते थे, मगर पिछली रात महल की सीढ़ियों से गिरकर वे अपने आप ही प्राण खो बैठे हैं। वैसे हम ने तुम्हारी कोई हानि नहीं की है, इसलिये तुम अपनी प्रभावी बोली से हमें कोई सज़ा नहीं दे दो ।"

भैरव ने सोचा कि अब उस गाँव में रहना ख़तरे से खाली नहीं है। इसलिये वह सीधे अपने घर पहुँचा और अपने भेड़ों के रेवड़ को हाँककर जंगल की ओर निकल पड़ा

जंगल में डाकुओं के एक गिरोह ने उसे घेरा, भैरव घबड़ाकर उनसे बोला, "भाइयों, चाहो तो तुम इस रेवड़ को रखो, मगर मुझे अपने प्राणों के साथ छोड़ दो। मैं साधारण आदमी नहीं हूँ, याद रखो !"

भैरव की ये बातें सुनकर डाकू ठहाके मारकर हँस पड़े। इतने में झाड़ियों के पीछे से एक चीता रेवड़ के सामने कूद पड़ा और एक भेड़ को मुँह में दबाकर भागने लगा। भैरव ज़ोर से चिल्लाकर बोला, "अरे, तुम्हारा अन्तिम काल ही आया समझो, तुम ने यह क्या किया ?"

फिर क्या था। दूसरे ही पल चीता छटपटा कर दम तोड़ बैठा। इस घटना को देख डाकू थरथर काँपने लगे। उनके सरदार ने झट अपनी पगड़ी उतारकर भैरव के मुँह में ठूँस दी और वह उसे अपने अड्डे पर ले गया ।

पड़ा । रेवड़ के सामने मनुष्य और उसके पीछे चले आते व्याघ्रशावकों को देख राजधानी की जनता हाहाकार मचाती बदहवास होकर इधर उधर भागने लगी । लेकिन उन शावकों को भेड़ों की भाँति 'में में' करते देख लोग आश्चर्य में आ गये ।

यह विचित्र समाचार राजा के मन्त्री ने सुना और उसने भैरव को बुलाकर पूछा, "तुम कौन हो ? बाघ के ये शावक भेड़ों की भाँति कैसे चिल्ला रहे हैं ? बताओ, असली बात क्या है ?"

इसके उत्तर में भैरव दर्प से बोला, "मन्त्री महोदय, मैं चाहे कोई भी क्यों न हूँ ! चाहूँ तो मैं इन व्याघ्रशावकों को सिंहों के रूप में बदल सकता हूँ ।" यह कहकर उसने तत्काल उनको सिंहों का रूप दिया ।

मन्त्री को विश्वास हो गया कि भैरव को महान् शक्ति प्राप्त है । मन्त्री उसे राजा के दरबार में ले गया और उसकी करामात का समाचार सुनाकर राजा से निवेदन किया "महाराज, आप इसको अपने सलाहकार के पद पर नियुक्त कीजिए ।" राजा ने सोचा, कि मन्त्री जब ऐसी कोई सलाह देता है, तब उसके पीछे उचित कारण भी होता है । इसलिये राजाने तुरन्त मन्त्री की बात मान ली ।

बाद में मन्त्री ने गुप्त रूप से राजा को समझाया, "महाराज, यह भैरव भले ही एक साधारण मानव हो, मगर यह असाधारण शक्ति रखता है । उस शक्ति का उचित उपयोग करने की

संयोग की बात है— उसी रात राजभटों ने डाकुओं के उस अड्डे को घेर लिया और सभी डाकुओं को बन्दी बनाकर वे ले गये । भैरव को देखकर राजभटों ने सोचा कि यह डाकुओं का शिकार बना कोई यात्री है । इसलिये उसके बन्धन खोलकर उसे वहीं छोड़कर वे चले गये ।

उस वक्त भैरव को अपने रेवड़ की याद आयी । उसने व्याकुल होकर कहा, "मेरी सभी भेड़ें बाघ के शावकों के रूप धरकर पैदा होती तो क्या ही अच्छा होता ! कोई भी खूँख्वार जानवर उन्हें छेड़ने की हिम्मत नहीं करता ।"

दूसरे ही क्षण भेड़ों का रेवड़ व्याघ्रशावकों की शकल धरकर भैरव के सामने उपस्थित हुआ । वह उस रेवड़ को हाँककर राजधानी की ओर चल

बुद्धि का इस में अभाव है। उस के लिये यह शक्ति 'बन्दर के हाथ हीरे' जैसी है। ऐसा व्यक्ति अगर हमारे शत्रु के हाथ आये, तो हमारे लिये ख़तरा पैदा हो सकता है। हम इस को उचित ढंग से समझाकर इसके द्वारा अनेक महान् कार्य संपन्न कर सकते हैं।"

इसके बाद भैरव के लिये एक विशाल महल का प्रबन्ध किया गया। उसमें भैरव के लिये उसकी इच्छानुसार भोजन और मनोरंजन के साधन उपलब्ध हों ऐसा इन्तज़ाम किया गया। कालान्तर में राजा ने भैरव के द्वारा राज्यसंबन्धी अनेक कार्य संपन्न करवाये। अब राजा शत्रु के भय से मुक्त हो गया।

एक दिन भैरव के महल के पहरेदार ने उससे गपशप करते हुए पूछा, "महाशय, आप को अपने गत जीवन और वर्तमान जीवन में कोई अन्तर दिखाई देता है ?"

गहरी साँस लेकर भैरव बोला, "इस के पूर्व भेड़ों को चराते मैं जंगल में स्वेच्छापूर्वक घूमा करता था; उसी जीवन में मैं पूर्ण संतुष्ट था। अब मैं उससे वंचित हूँ। फिर भी इस समय मेरा जीवन निर्विघ्नता से चल रहा है। जब तब मेरे मन में अपने लोगों में जाकर अपना समय बिताने की बलवती इच्छा जागृत होती है; पर क्या करूँ ? राजा तो मुझे यहाँ से निकलने ही नहीं देते !"

इसपर संतरी मुस्कुराकर बोला, "भैरव, तुम भी कैसे निरे भोले हो ! तुम स्वयं ही नहीं जानते कि तुम्हारे अन्दर कैसी शक्ति छिपी हुई है। मैं तो यूँ ही जिज्ञासवश पूछ रहा हूँ। क्या तुम्हारे मन में अपूर्व सुन्दरी राजकुमारी के साथ विवाह करने की

कामना उदित नहीं हुई ?"

भैरव घबराहट से इधर उधर ताक कर बोला, "ओह, सुवर्ण-प्रतिमा जैसी राजकुमारी के साथ विवाह करने की इच्छा कौन नहीं रखता होगा ! परन्तु, यह इच्छा प्रकट करने पर राजा उसी वक्त मुझे शूली पर चढ़वा देंगे न !"

भैरव के कन्धेपर थपथपाते हुए उसके भीतर उत्साह भरते हुए संतरी ने कहा, "तुम्हारे मुँह से जो भी बात निकलती है, वह अवश्य घटित होकर रहती है। यह बात राजा भी अच्छी तरह से जानते हैं। पर ऐसा लगता है कि, तुम्हीं ने यह बात ठीक ठीक नहीं समझ ली। तुम कल ही राजा के दर्शन करके उनके सामने राजकुमारी के साथ विवाह करने की अपनी इच्छा प्रकट करो और यदि उन्होंने न माना तो तुम अपनी शक्ति का परिचय दो उन्हें ।"

अब भैरव के मन में खलबली मच गयी। रातभर वह राजकुमारी के साथ अपने विवाह के सपने देखता रहा ।

अगले दिन सचमुच ही भैरव ने राजा के दर्शन करके अपनी इच्छा उसके सामने ज़ाहिर की ।

भैरव की बात सुनकर राजा आश्चर्य में आ गया; पर संभलकर बोला, "तुम जैसा अद्भुत शक्तिवाला युवक मेरा जमाता बने, इससे बढ़कर मेरे लिये भाग्य की बात और कौनसी हो सकती है ? भैरव, देखो अब भोजन का समय हो गया है चलो, मेरे साथ बैठकर भोजन कर लो ।"

भैरव राजा के बाजू में बैठ गया। उसने एक ग्रास मुँह में डाला और उसे लगा कि उसका सिर चकरा रहा है। दूसरे ही क्षण वह आसन से नीचे गिर पड़ा। उसने यह भी भाँप लिया कि राजा ने उस पर ज़हर का प्रयोग किया है। वह मौत के डर से काँप उठा ।

फर्शपर लोटता हुआ वह बोल उठा, "उफ़ ! किस मुसीबत में फँस गया हूँ मैं। सब की आँख बचाकर फिर से गूँगा बनकर भेड़ों को चराता रह जाऊँ तो क्या ही अच्छा होगा !"

बस, इतना कहते ही उस की कामना सफल हो गयी ! दूसरे ही पल वह अपने गाँव का गूँगा गड़रिया बन गया

दहेज़ का जाल

शृं गेरी गाँव में कनकराज नाम का किसान रहता था। उसकी इकलौटी बेटी का नाम सुन्दरांगी था।

इस हालत में एक दिन कनकराज को गंगापुर के निवासी रत्नराज का समाचार मिला।

वैसे रत्नराज एक साधारण किसान था। उसके चन्द्रकान्त नामक इकलौता पुत्र था। कनकराज ने चन्दकान्त को एकदम पसंद किया।

मगर यहाँ भी वर-पिता ने बीस हज़ार रुपये दहेज़ माँगा! इसपर कनकराज ने पुत्री को दिये जानेवाले दहेज़ के अनुरूप—बीस तोले सोने के गहने बेटी के लिये बनवा देने की शर्त रत्नराज के सामने रखी। रत्नराज ने इसपर साफ़ कह दिय कि यह उसकी ताक़त के बाहर का मामला है! तब कनकराज ने भी बीस हज़ार दहेज़ देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। इस कारण रिश्ता कायम न हो पाया। कनकराज अपने गाँव लौट पड़ा।

इस हालत में दोनों अलग अलग जाकर पड़ोस गाँव के निवासी श्यामशास्त्री से मिले। श्यामशास्त्री एक तो बुज़ुर्ग थे, और ऐसी समस्याएँ सुलझाने में सिद्धहस्त भी थे। दोनों ने अपनी अपनी समस्या उनके सामने रखी।

एक दिन श्यामशास्त्री ने कनकराज के घर जाकर समझाया, "कनकराज, तुम मेरी बात मानकर रत्नराज की शर्त के अनुसार दहेज़ चुकाने की बात कबूल करो।"

"पंडितजी, यह आप क्या कहते हैं? बीस हज़ार रुपये मैं कैसे दे सकता हूँ। इस मामले में अपनी असमर्थता तो मैं ने पहले ही आप के सामने रखी थी!" कनकराज ने उत्तर दिया।

"क्या, मैं यह बात नहीं जानता? कहीं से कर्ज़ तो ला सकते हो?"

"मगर वह कर्ज़ मैं कैसे चुका दूँ? यह काम

शैला शर्मा

मुझ से नहीं होगा पंडितजी !" कनकराज ने स्पष्ट कह दिया ।

"अरे, यह बात भी मुझ से छिपी नहीं है । तुम एक काम करो । रत्नराज तुम्हारी बेटी के लिये जो गहने बनवा देंगे, शादी के बाद उन्हें बेचकर तुम अपना कर्ज़ चुका दो । बस, मामला ख़तम् !" श्यामशास्त्री ने उपाय बताया ।

इस के बाद श्यामशास्त्री रत्नराज के घर गये; और उसे समझाने लगे, "रत्नराज, कनकराज ने अपनी बेटी के लिये जो गहने माँगे हैं, वे उसे देने के लिये 'हाँ, कहो न !"

रत्नराज विस्मय में आकर कहने लगा, "शास्त्रीजी, आप तो भली भाँति जानते हैं कि बीस तोले सोने के गहने बनवाकर अपनी पुत्र वधू को पहनाने की मेरी औक़ात नहीं है । फिर भी आप मुझे यह सलाह कैसे दे रहे हैं ?"

"क्या मैं यह भी नहीं जानता ? मगर तुम कहीं से उधार लेकर दुलहिन को गहने पहना दो ।" श्यामशास्त्री ने सुझाया ।

"मगर वह कर्ज़ा भी तो चुकाना पड़ेगा न ? वह कैसे चुका दूँ ?" रत्नराज ने पूछा ।

"अरे, यह तो आसान बात है ! कनकराज तुम्हारे पुत्र को दहेज़ में जो रुपया देगा, उस रकम से अपना कर्ज़ा चुका दो । यह हुई ना बात ?"

इसके बाद बिना किसी विघ्नबाधा के सुंदरांगी और चन्द्रकान्त का विवाह संपन्न हुआ । इसके बाद श्याम शास्त्री ने कनकराज और रत्नराज के पास जाकर अपनी चली चाल समझा दी । उन्होंने बताया कि दोनों भी कैसे मूरख हैं जो एक दूसरे के प्रति ज़रा भी हमदर्दी न दिखा सके । इस बीच वधू के पिता को अपने दामाद के प्रति और वर के पिता को अपनी बहू के प्रति ऐसा संतोष हुआ कि दोनों को अपने किये पर लज्जा महसूस हुई । रत्नराज ने दहेज़ का धन कनकराज को लौटा दिया। फिर भी श्यामशास्त्री को यह मंजूर न था कि नववधू अपने आभूषणों से वंचित हो । वे स्वयं उदारचित्त थे । गहनों में लगा धन उन्होंने अपने कोश में से दे दिया ।

११

[अद्भुत झरना पार कर जयराज मुनि की सहायता से सभी विघ्नों से मुक्त हो स्वप्नभूमि में पहुँचा। इसके बाद जयराज को घाटी पार कराकर मुनि अदृश्य हो गया। संतुष्ट, शांत भूमि में प्रवेश करते ही जयराज को युवरानी दिखाई दी। उसने बताया— नील पर्वतपर स्थित नक्षत्र फल का सेवन करने पर देवी के दर्शन संभव होंगे। — आगे पढ़िये]

जयराज और युवराज्ञी जहाँ बैठे थे, वहाँ एक हिरन दौड़ता हुआ आ पहुँचा।

युवराज्ञी ने उस हिरन से कहा, "अद्भुत पौधे में इस वर्ष का नक्षत्र फल निकल आया है या नहीं? मुझे उसकी बहुत प्रतीक्षा है। ज़रा जाकर देख आओगे? दौड़-धूप तो तुम्हारे लिए कठिन नहीं है। जाओ, नक्षत्र फल देखकर आओ।"

दूसरे ही पल यह हिरन समीप की एक छोटी पहाड़ी पर चढ़ गया और अपनी पिछली टाँगों पर खड़े होकर उसने देखा, मगर पौधे का कुछ पता न चला। इस पर हिरन ने दूर पर खड़े खरगोश को पुकारा। खरगोश हिरन के सिरपर चढ़कर अपनी गर्दन जितनी बने, उतनी ऊँची कर के देखा, पर उसे भी पौधा नज़र नहीं आया। इतने में कहीं से एक अवधि में वहाँ के अनेक चमत्कार देखे। तब उसने समझ लिया कि यह भूमि असल में संतुष्टि और शान्ति की भूमि है। इस भूमि के लोग अद्भुत शक्तियाँ रखते हैं। वे इस

मनोज दास

बात का निर्णय कर सकते हैं कि चन्दकान्ति का वर्ण नीला हो, सुवर्ण की भाँति दमदमाता हो या चाँदी के जैसा चमचमाता हो ! वहाँ के लोग अपनी अपनी कल्पना के अनुसार चित्र खींचते हैं और स्वेच्छा से उस की प्राण प्रतिष्ठा भी कर सकते हैं । इस प्रकार उन्होंने असंख्य नये नये भवन, सुंदर तड़ाग, विचित्र वृक्ष तथा विभिन्न रंगों के पुष्पों की सृष्टि की है । अतः यहाँ की प्रकृति अभूतपूर्व सुंदर है । यहाँ वे पेड़ और वनस्पतियाँ हैं जो मैंने आज तक देखी नहीं हैं । यहाँ की वनस्पतियों में भी ज़रूर अद्भुत गुण होंगे ! यहाँवाले जानते हैं कि नहीं पता नहीं । यहाँ के फूलों के चित्र-विचित्र रंग बस देखते ही बनता है । यहाँ के फलों को मैं ने चखा तो नहीं, पर उनका रस भी अमृतोपम होगा । पर ये सब शाश्वत नहीं होते । फिर भी सुंदर स्वप्न देखकर उन्हें रंगों से चित्रित करके, अपनी अपूर्व शक्तियों द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा कर के जीवन बिताने में आनन्द का अनुभव करते हुए उसने देखा । उन में अभाव केवल इस बात का है कि वे जिस बात की खुद कल्पना नहीं करते, उन्हें प्राप्त भी नहीं कर सकते । मगर इस कारण उन्हें किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती । फिर भी अपनी कल्पना से परे कल्याण और प्रगति वे साध नहीं सकते । जयराज को ऐसा प्रतीत हुआ कि वहाँ के लोग एक प्रकार से यह भी नहीं जानते कि विश्वास क्या चीज़ है ।

दूसरे दिन सबेरे युवरानी ने जयराज को नील पर्वत के शिखर तक पहुँचाया । तब जयराज ने उसे कहा, "संतुष्ट जीवी एवं शान्त प्रकृतिवाले आप लोग जो अनेक कार्य साध नहीं सकते हैं उन्हें हम मानव साध सकते हैं । असंभव कार्यों को संभव करने में हम प्रयत्नशील हो सकते हैं, संकटों का सामना कर सकते हैं, सौंदर्य की सृष्टि कर सकते हैं । पर हमारा दुर्भाग्य केवल यही है कि हम अपनी स्वेच्छा और स्वच्छन्दता को दुष्कार्यों में लगा देते हैं । सत्कार्यों की ओर हमारी प्रवृत्ति नहीं । अच्छे काम करने में हमें सहज रुचि नहीं है । पाप-कर्म करने में हमें संतोष मिलता है । धर्म हम जानते हैं, पर उससे दूर रहने में ही हमें आनन्द मिलता है । जो नहीं करना चाहिये उसे जानकर भी हम से किये बिना नहीं रहा

जाता । यही हमारे लिये अभिशाप है ।"

"लेकिन मनुष्य चाहता है तो उत्तम आदर्शों की ओर अग्रसर हो सकता है ।" युवरानी बोली ।

"हाँ, हाँ ! चाहे तो वे बदल सकते हैं, मगर संकल्प करना चाहिये न ! ऐसे विचार रखनेवाले भी कौन है ? मुनि के कथनानुसार अधिकांश मानव अज्ञान को ही आनन्द मानकर अपना जीवन बिता रहे हैं। ज्ञान की महिमा वे व्याख्यानों में सुनते हैं। पर करने का समय आता है तो सब ज्ञान की बातें वे भूल जाते हैं । अज्ञान के अंधकार में रहने का मानो उनको अभ्यास हो गया है । ऊँचे जीवन की लालसा ही उनमें नहीं है । सभी क्षणिक सुखों के पीछे पड़े हैं। शाश्वत सुख प्राप्त करनेकी किसी को इच्छा ही नहीं ।" जयराज ने कहा ।

सूर्योदय का समय था । चारों तरफ़ शान्ति व्याप्त थी । नीलपर्वत शिखर पर स्थित विचित्र पौधे में केवल एक फल लटक रहा था । वह फल नक्षत्र की भाँति चमक रहा था । युवरानी ने फल तोड़कर जयराज के हाथ में थमा दिया और कहा, "तुम्हें उस पार के जिस प्रदेश में जाना है, उसकी सीमा इस पहाड़ की तलहटी से शुरू होती है । वहाँ पर सदा घना अँधेरा छाया रहता है । आँधिया चलती रहती है; मेघगर्जन और बिजली की कौंधों से प्रकृति में विलय तांडव नृत्य चलता रहता है । मगर इस नक्षत्र फल को खाकर निकलोगे, इस लिए इन प्राकृतिक प्रकोपों से तुम्हें कोई हानि नहीं होगी । मगर वहाँ पर कुछ दुष्ट शक्तियाँ होती हैं। तुम उन से ज़रा भी डर जाओगे तो ये तुम्हें हानि पहुँचाने के लिये तैयार बैठी होंगी। जब तक तुम्हारे मन में भय उत्पन्न नहीं होता, तब तक तुम्हें उन की परवाह करने की कोई ज़रूरत नहीं है। भय तुम्हारा बड़ा शत्रु होगा। इस भूमि में निर्भय बनकर विचरो, सारे सुख तुम को मिलेंगे । थोड़ा भी डर हो, तो मुसीबतों का सामना करना होगा । इस तथ्य को अच्छी तरह समझो । तुम साहस करके जाओ और विजयी बनकर लौट आओ ।" इस प्रकार समझाकर युवरानी ने जयराज को बिदा कर दिया ।

विनोद नक्षत्र-फल खाकर आगे बढ़ा । थोड़ी दूर आगे जानेपर उसे पहाड़ के बीच एक सँकरीली घाटी दिखाई दी । पहाड़ के चारों ओर

उपदेश जयराज भूला नहीं था। उस भयंकर आंधी में हवा के चपेटे खाते हुए, वर्षा में भीगते हुए हिम्मत से आगे बढ़ता ही रहा। वह अकेला ही था, निड़र होकर सब कठिनाइयों का सामना करता रहा।

अचानक दोनों तरफ़ फैले चट्टानों में छेद बनकर उनमें से अत्यंत तेज़ीसे पानी बहने लगा! कुछ ही क्षणों में घुटनों तक पानी आ गया। जयराज ने सोचा कि अब कुछ ही क्षणों में उसका डूब जाना निश्चित है। तभी बिजली की एक भारी कौंध हुई और उस रोशनी में उसने एक ऊँचे चट्टान जैसी कोई चीज़ देखी। एक ही छलांग में वह उस चट्टान पर जा बैठा। मगर दूसरे ही क्षण भयानक गर्जन करता हुआ वह प्राणी दौड़ने लगा। विनोद ने समझ लिया कि वह जिसे चट्टान समझा था; वह दरअसल एक विशाल जानवर है। जब जब बिजली कौंधी तब तब जयराज ने देखा कि वह जानवर सुवर्ण रंग का है। पकड़ ज़रा भी ढीली हो गयी तो नीचे गिरने का डर था; इसलिये जयराज उस जानवर को कसकर पकड़े रहा। मन में ज़रा भी भय पैदा होते ही वह उसे दूर भगाता। इस भूमि को अच्छी तरह देखने और नये अनुभव प्राप्त करने की आस मन में बाँधे था। उस जानवर की पीठ पर ऐसे बैठा जैसे कोई कुशल घुड़सवार घोड़े पर सवार होता है।

थोड़ी ही देर में वह जानवर जयराज को घने अँधेरे से पतली रोशनी में ले आया। अब जयराज ने जान लिया कि, वह जानवर एक भारी

मेघ छाये हुए थे। थोड़ी दूर जाने पर जयराज ने युवरानी के लिये पीछे मुड़कर देखा। घना कुहरा छाया हुआ था, इसलिये उसे कुछ स्पष्ट दिखाई नहीं दिया कि वह वहाँ पर वह थी या नहीं! क्रमशः कुहरा और घना होता गया। और एक हाथ दूर की चीज़ें भी नज़र नहीं आ रही थीं। मार्ग सीधा था, इसलिये आगे बढ़ने में जयराज को कोई तकलीफ़ नहीं हुई। अब रुक रुक कर बर्फीली हवा तेज़ी के साथ बहने लगी; और साथ ही आँखों को चौंधियानेवाली बिजली की दमक; कान के पर्दों को फोड़नेवाले मेघगर्जन और चट्टानों को चूर करनेवाले वज्रपात भी होने लगे। जामुन के परिमाण की वर्षा की बूँदें चट्टानों पर गिरकर नीचे लुढ़कने लगी। निर्भय होने का

भरकम सिंह है। तभी उसने देखा कि उसके सामने थोड़ी ही दूरी पर आसमान को छूनेवाली भयंकर ज्वालाओं से पूर्ण आग की लपटों की एक दीवार खड़ी है। जयराज चिल्लाने लगा, "रुक जाओ! रुक जाओ!" मगर रुके बिना वह सिंह आग की दीवार की ओर बढ़ता ही गया और पलभर में ही वह आग की दीवार के बीच में तीर की भाँति निकल भी गया। जयराज ने क्षण भर के लिये आँखें मूँद लीं। दूसरे ही पल सिंह उसे आग की लपटों के उस पार ले गया था! अब उसे लगा कि वह तेज़ हवा में ज़ोर से कहीं फेंका गया है। कुछ ही क्षण बाद उसने अपने को एक सरोवर के पानी में तैरता हुआ पाया! सरोवर का पानी अत्यन्त स्वच्छ और स्वादिष्ट था। उस गुनगुने पानी में तैरते हुए उसे बड़ा मज़ा आया। चारों तरफ़ ऊँचे ऊँचे वृक्ष हवा में डोलते हुए नज़र आ रहे थे। उन पर वे फल लगे थे, जिनको उसने पहले कभी नहीं देखा था। उन रंग-बिरंगे फलों को देखते ही मुँह में पानी भर आता था।

जयराज को यह समझने देर न लगी कि, आग की दीवार को पार कराकर उसे इस तरफ़ लानेवाला सिंह उसे सरोवर में फेंक कर कहीं भाग गया है। पार्श्व में स्थित आग की दीवार सरोवर के पानी में प्रतिबिम्बित हो ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो सारे सरोवर में स्वर्णजल छलक रहा है!

जयराज ने देखा कि, सरोवर के बीच जल के ऊपर एक वृक्ष की शाखाएँ फैली हुई हैं। वह उस वृक्ष की दिशा में तैरता गया और वृक्ष की डाल पर चढ़ गया। कड़ाके की सर्दी से वह ठिठुर रहा था। वहाँ शाखाओं के बीच वृक्ष के तने में उसे एक खोखला दिखाई दिया। जयराज यह सोचकर उस खोखले में उतर पड़ा कि कम से कम अन्दर कुछ गरमी तो होगी ही। पर आश्चर्य की बात थी कि वह उस खोखले में धँसता ही चला गया। उसे कोई पता ही नहीं चला कि इस प्रकार वह कहाँ तक पहुँच गया। थोड़ी देर नीचे धँसते रहने के बाद जब उसने आँखें खोली, तो उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा! सुन्दर पुष्पों से भरे एक रमणीय उद्यान के बीचोंबीच एक मन्दिर सुशोभित है। पर सरोवर कहाँ? वह वृक्ष कहाँ? एक वृक्ष के खोखले के अन्दर इतना विशाल

प्रदेश कैसे समाहित हो सका ?

"इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?" एक आवाज़ अचानक जयराज को सुनाई दी। उसने उस आवाज़ की दिशा में देखा।

शान्त प्रकृतिवाला एक वृद्ध मन्दहास करता हुआ उसके पास पहुँचा। जयराज ने सोचा कि वह व्यक्ति संभवतः उस मन्दिर का पुजारी होगा। जयराज ने उसे प्रणाम कर के पूछा, "महानुभाव, आप ने मेरे मनकी बातें कैसे ताड़ लीं ? वृक्ष का खोखला छोटा ही है न ? फिर ऐसी छोटी जगह में इतना बड़ा उद्यानवाला प्रदेश कैसे समा गया ? —यही मेरी शंका है।"

"जहाँ तक जगह का सवाल है—यहाँ पर छोटी व बडी जगह ऐसी कोई बात ही नहीं है। तुम जगह को कैसे नाप सकोगे ?" पुजारी ने पूछा।

"फुट के नाप से नापते हैं।" विनोद ने जवाब दिया।

"इस प्रकार तुम जो माप करते हो, उस मापदण्ड को ही जहाँ कोई जगह नहीं है। जगह अविभिन्न और अखंड है। उसे अलग रूप से नापना संभव नहीं है। तुम अच्छी तरह से सोच कर देखो, तो बड़ी आसानी से तुम्हें बात अपने आप समझ में आएगी।"

जयराज को लगा कि पुजारी की बातों में सचाई है।

"लेकिन आपने मेरे मन के विचार को कैसे ताड़ लिया ?" जयराज की यही शंका थी।

"यहाँ इस भूमि में विशेष रूप से तुम्हारे या मेरे ऐसे कोई भिन्न भिन्न विचार नहीं होते। इस दिव्य प्रदेश में हम जैसे सामनेवाले व्यक्ति के बाह्यदर्शन कर सकते हैं, उसी प्रकार हम उस के मन के विचारों को भी स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। इतना ही क्यों ? तुम अभी मेरे मन की भावनाओं को भी देख सकते हो। चाहो तो प्रयत्न करके देखो तो सही।" पुजारी ने कहा।

जयराज ने पुजारी के मन के विचारों को पहचानने के विचार से उसकी ओर देखा। दूसरे ही क्षण उस वृद्ध पुजारी के मन की भावनाएँ जयराज समझ सका !

"आप मुझे बतानेवाले हैं, कि मैं इस मन्दिर की देवी के दर्शन करने के लिये ही इतनी दूर की
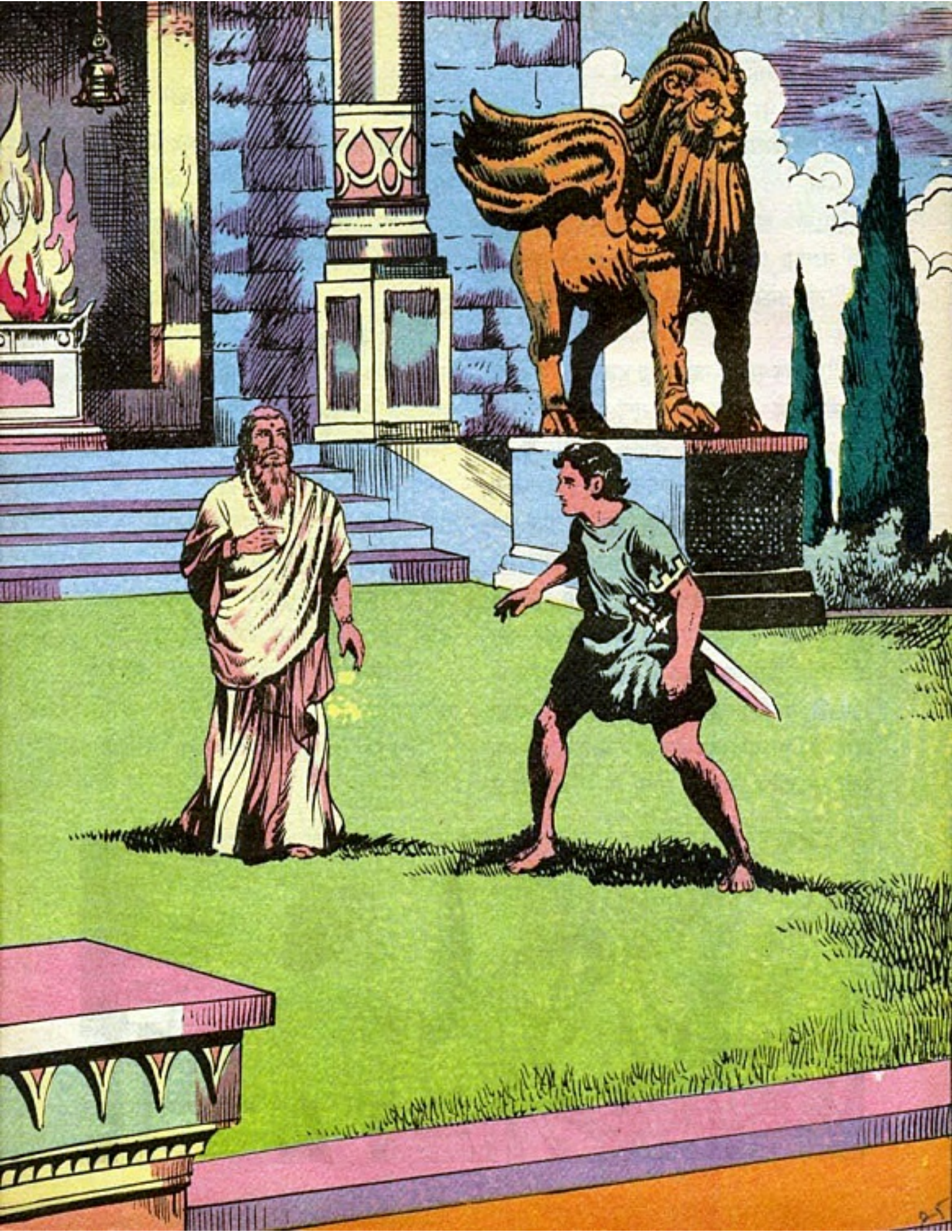
यात्रा करके यहाँ तक आया हूँ। आप जानते हैं कि मैं तीन वर और माँगना चाहता हूँ। यही है न ?" जयराज ने पूछा।

"हाँ, सच है। फिर भी इस से तुम्हें अधिक संतोष नहीं होगा। क्योंकि, तुम चार वर माँगने की कामना कर रहे हो।" पुजारी ने कहा।

"हाँ, आप का कथन सत्य है।" जयराज बोल उठा।

"पर यह संभव नहीं होगा। क्योंकि, तीन वर ही सीमित हैं। इस संदर्भ में तुम्हें एक बात समझ लेने की कोशिश करनी चाहिये। सृष्टि की हर चीज़ की अपनी अपनी सीमा होती है। उस सीमा के पीछे एक कारण और एक न्याय भी होता है। सिंह जब तुम्हें अपनी पीठ पर बिठाकर दौड़ रहा था, तब तुम्हारे मन में भय की भावना अंकुरित हुई थी। फिर भी सिंह ऐसा न करता तो तुम आग की दीवार कैसे पार करते ? इसी प्रकार वृक्ष के खोखले में धँसते समय तुम्हारे मन में निराशा जगी थी, पर यदि तुम धँस न गये होते, तो क्या यहाँ पर पहुँच जाते ? सोचो तो।" पुजारी ने कहा।

पुजारी ने आगे कहा— "अब रही तुम्हारे वर माँगने की बात ! एक समय तुम्हारे मन में तीन वर माँगने की इच्छा थी, अब तुम चार वर माँगना चाहते हो। बहुत संभव है, कुछ समय के बाद तुम पाँच माँगना चाहोगे। और फिर छः और फिर सात.......

देखो, इसका कोई अंत नहीं है। तुम्हारी यह प्रवृत्ति मैं अच्छी तरह जानता हूँ। निरंतर अपनी इच्छाओं का चक्र बढ़ाने की। जितना मिला है, उससे अधिक तुम को चाहिए। मेरी समझ में नहीं आता इस तरह तुम्हारा लोभ क्यों बढ़ता जा रहा है ? जितना मिल गया उसमें तुम को संतोष क्यों नहीं ? संतोष ही जीवन में सब कुछ है। एक बार मन में संतोष आया, तो फिर जीवन का अधूरापन जाता रहेगा। फिर एक नया जीवन प्राप्त होगा।

मैं कह रहा हूँ इस तथ्य को ज़रा समझने की कोशिश करो।"

जयराज ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया।

[सशेष

अद्भुत मुकुट

दृढ़व्रती विक्रमार्क वृक्ष के पास लौटे। पेड़ से शव को उतारा, और उस कंधे पर रखकर हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने राजा से कहा— "राजन्, इस अर्ध रात्रि के समय पूरी लगन के साथ जिस कार्य की साधना के लिए आप श्मशान में घूम-भटक रहे हैं, उसके पूर्ण होने पर उसका सत्फल आप को प्राप्त हो ही जाएगा इस भ्रम में आप न रहें। क्योंकि कभी कभी अद्भुत महिमाएँ और दिव्य शक्तियाँ हित के बदले अहित का ही कारण बन जाती हैं। इसकी मिसाल के रूप में मैं आप को एक देवगुप्त की कहानी सुनाता हूँ। अपने परिश्रमों को भुलानेके लिए इसे सुन लीजिए।"

बेताल ने कहानी सुनाना शुरू किया—

प्राचीन काल में हंसगिरि राज्य में नन्दगुप्त नाम का एक वृद्ध आदमी रहता था। उसका इकलौता पुत्र था देवगुप्त। नन्दगुप्त के पास एक

बेताल कथा

अद्भुत मुकुट था। उस मुकुट में तरह तरह के कीमती रत्न जड़े थे। इस से वह मुकुट हमेशा जगमगाता नज़र आता।

देवगुप्त बड़ा ही प्रज्ञासंपन्न और बुद्धिवादी था। वह पूर्णतः सुशिक्षित भी था। कुछ व्यापार करके धन कमाने की उसके मन में प्रबल इच्छा थी। पर अपने दरिद्र पिता के साथ वह अपना दुखमय जीवन ज्यों-त्यों करके बिता रहा था। वह अपनी इच्छा की पूर्ति नहीं कर सका था।

एक दिन देवगुप्त ने नम्रता के साथ अपने पिता से पूछा— "पिताजी, दरअसल आप के मन की बात मेरी समझ में नहीं आती। आपके मुकुट का मूल्य हज़ारों स्वर्णमुद्राओं से भी सहज अधिक है, और आश्चर्य है हम यहाँ खाने के लिए तरस रहे हैं! आखिर ऐसा क्यों?"

नन्दगुप्त ने समझाते हुए अपने पुत्र से कहा— "बेटा, यह मुकुट कोई साधारण वस्तु नहीं है। इसे बेचकर धन-संग्रह नहीं किया जा सकता। आओ, इसका रहस्य मैं तुम्हें बता दूँ— कोई इस मुकुट को अपने सिर पर धारण कर और शाही वस्त्र पहनकर अगर राजा के दर्शन कर ले, तो इस मुकुट की अद्भुत शक्ति से राजा उस मुकुट धारी के साथ अपनी कन्या का विवाह संपन्न करेंगे। मेरी पीढ़ी में किसी को राजा का दामाद बनना संभव न हुआ। मेरा सारा जीवन अनेक विघ्न-बाधाओं में ही व्यतीत हुआ। मेरे संचित धन से राजोचित वस्त्र और आभूषण मैं कभी खरीद न सका। इस लिए मैंने आज तक इस मुकुट को इस विचार से छिपाकर रखा कि मैं कम-से-कम तुम को राजा का दामाद बना दूँ।"

इस रहस्य को मालूम करने पर देवगुप्त ने सोचा— इस मुकुट को बेच कर जो धन आएगा उसे व्यापार में लगाकर काफ़ी लाभ प्राप्त कर लें और उस धन से फिर उसी मुकुट को खरीद किया जाए। तब जाकर शाही वस्त्र खरीदकर उन्हें धारण करके राजा के दर्शन किये जा सकते हैं। फिर युवरानी से विवाह संपन्न किया जा सकता है। पर कठिनाई यह है कि पिताजी तो मुकुट बेचने के लिए तैयार नहीं है, फिर क्या करे? यही समस्या उसके सामने थी।

कुछ दिनों बाद वृद्ध नन्दगुप्त की मौत हो गई। देवगुप्त ने किसी अमीर आदमी के हाथ

अपना मुकुट बेचना चाहा, इस शर्त पर कि जब वह चाहेगा उसका मूल्य चुका कर मुकुट को वापस प्राप्त कर सकता है। अमीर आदमी ने उसकी शर्त मान ली और दस हज़ार स्वर्ण-मुद्राओं के लिए देवगुप्त से मुकुट खरीदा। इस धन से देवगुप्त ने अपना समुद्री व्यापार प्रारंभ किया। इसके पहले मेघनाथ नाम का एक व्यापारी समुद्री व्यापार में एकदम छाया हुआ था। इस क्षेत्र में देवगुप्त का प्रवेश उसे बिलकुल अच्छा न लगा। दिन-ब-दिन देवगुप्त का व्यापार सभी क्षेत्रों में बढ़ता गया, साथ-साथ वह व्यापार-कला में माहिर हो गया। देवगुप्त की टक्कर में मेघनाथ ठहर नहीं पाया। इस लिए उसने यह व्यापार छोड़ दिया। और जौहरी बनकर उसने रत्नों का व्यापार शुरू किया।

देवगुप्त ने शीघ्र ही बीस हज़ार मुद्राएँ संचित कर लीं और मुकुट माँगने अमीर के पास आया।

अमीर ने मुस्कुराते हुए कहा— "ब्याज के साथ पचीस हज़ार मुद्राएँ दो और मुकुट वापस ले जाओ।"

लाचार हो देवगुप्त घर लौटा। अब की बार उसने दुगुना फ़ायदा देनेवाला रत्नों का व्यापार शुरू किया। मेघनाथ ने देखा कि देवगुप्त और एक बार उसी के व्यवसाय में प्रतिद्वंद्वी बनकर आ गया है। उसके मन में बड़ा क्रोध आया और उसने प्रतिशोध लेने का निश्चय किया।

देवगुप्त ने इस नये व्यापार में तीस हज़ार मुद्राओं का लाभ प्राप्त किया और फिर उस अमीर आदमी से मिला। उस समय अमीर आदमी ने कहा— "सुनो भाई, बहुत दिन प्रतीक्षा करने पर भी तुम मुकुट खरीदने नहीं आये, अतः मैं ने सोचा अब तुम्हें इसकी आवश्यकता ही नहीं है। मैं ने मेघनाथ के हाथ उसे तीस हज़ार मुद्राओं में बेच डाला है। माफ़ करना।"

देवगुप्त मेघनाथ के यहाँ पहुँचा और बोला— "मैं आपको तीस हज़ार मुद्राएँ दे सकता हूँ। मेरा मुकुट मुझे वापस दे दीजिएगा ?"

मेघनाथ ने उत्तर दिया— "यह कैसे संभव होगा देवगुप्त ? यह रत्नों का व्यापार दुगुना लाभ देनेवाला है ! तुम यह जानते ही हो। मैं ने जो
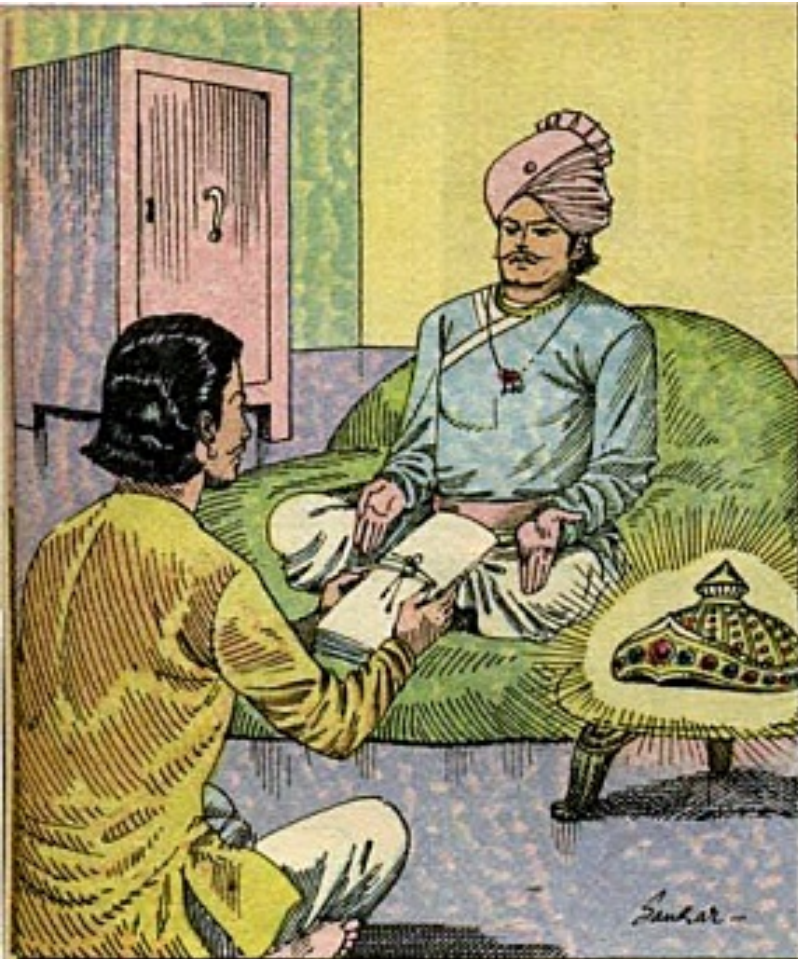
लागत लगाई है, उसके दुगुनी रक़म देकर तुम मुकुट को ले जा सकते हो ।"

देवगुप्त समझ गया कि मेघनाथ उससे बदला ले रहा है । उसने तुरन्त ही वह नगर छोड़ दिया और किसी अन्य नगरी में जाकर खूब व्यापार किया, लाखों मुद्राएँ लाभ में कमा लीं और फिर मेघनाथ की नगरी में लौट आया ।

अब देवगुप्त ने मेघनाथ से मिलकर पूछा— "इस बार मैं एक लाख मुद्राएँ लाया हूँ । उन्हें स्वीकार कर मेरा मुकुट मुझे देने में तुम्हें कोई आपत्ति संभवतः नहीं होगी ?"

"देवगुप्त, दरअसल इस मुकुट का दाम दस हज़ार मुद्राओं से अधिक नहीं है । तुम इतने भारी मूल्य पर उसे खरीदना चाहते हो, इससे मेरे मन में संदेह होता है कि इस मुकुट के पीछे ज़रूर कोई रहस्य छिपा हुआ है । बताओगे वह रहस्य क्या है ?" मेघनाथ ने देवगुप्त से पूछा ।

देवगुप्त ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया— "तुम मनचाहा मूल्य माँगो, मैं उसे देने के लिए तैयार हूँ । पर इसका रहस्य मैं तुम्हें कभी नहीं बताऊँगा । समझे ?"

कुछ क्षण मेघनाथ सोचता रहा । फिर बोला— "अगर ऐसा है तो इस शर्त पर मैं मुकुट तुम्हें दे सकता हूँ कि अपनी सारी संपत्ति तुम मेरे हाथ सौंप दो । ऐसा कर सकोगे ?"

देवगुप्त ने सोचा कि उस मुकुट की मदद से कभी न कभी युवरानी से शादी की जा सकेगी । इस लिए उसने मेघनाथ की शर्त मान ली और अपनी सारी संपत्ति मेघनाथ को सौंपकर अपने मुकुट को वापस ले लिया ।

इसके बाद देवगुप्त ने अपने जान-पहचान के लोगों से कुछ पैसा उधार लेकर शाही वस्त्र धारण कर राजा के पास जानेकी योजना बनायी, पर आश्चर्य कि देवगुप्त को किसीने भी उधार पैसा नहीं दिया । उसकी माली हालत दिन-ब-दिन गिरती गई, यहाँ तक कि एक वक्त का भोजन जुटाना भी उसको बहुत कठिन हुआ ।

इस पर देवगुप्त ने भली भाँति सोचा और वह मेघनाथ से मिला । उसने मेघनाथ से निवेदन किया— "सुनो, मैं तुम्हें मुकुट का रहस्य बताकर इसे तुम्हें सौंपने आया हूँ । तुम यह मुकुट धारण कर राजा के योग्य ऊँचे वस्त्र पहन लो, और जब

तुम्हें राजा के दर्शन होंगे तो वे उसी समय अपनी पुत्री के साथ तुम्हारा विवाह संपन्न करेंगे। यह मुकुट लेकर अगर तुम मुझे कृपया कुछ पैसे दो, तो मैं कोई अन्य व्यापार करके अपना गुज़ारा कर दूँगा। इतनी मदद नहीं कर सकोगे?"

"अगर मैं तुम्हारा यह मुकुट लेकर तुम्हें धन दूँ, तो तुम व्यापार में मेरे प्रतिद्वंद्वी बन जाओगे। अच्छा तो यह है कि तुम यहाँ से चले जाओ, वरना मैं अपने सेवकों द्वारा तुम्हारी खूब मरम्मत कराऊँगा। जाते हो कि नहीं?"—मेघनाथ ने कहा।

देवगुप्त अब सब तरह से निराश हो गया था। इस लिए मेघनाथ से डर कर चुपचाप वहाँ से चलता बना। इसके बाद किसी और शहर में जाकर देवगुप्त ने बड़ी मुश्किल से एक नया व्यापार शुरू किया। थोड़े ही समय में उसकी दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की हुई।

फिर और एक दिन एक भिखारी देवगुप्त के पास आया, उसने नम्रतापूर्वक कहा— "भाई देवगुप्त, मैं मेघनाथ हूँ। किस्मत ने मेरा साथ नहीं दिया, परिणामस्वरूप मैं आज अपना सर्वस्व खोकर इस प्रकार दर दर भीख माँग रहा हूँ। तुम्हारा समाचार सुनकर मैं तुम्हारा यह मुकुट वापस देने आया हूँ। इसे तुम कृपया स्वीकार करो और राजा के दामाद बनकर सब प्रकार के सुख भोगो।"

देवगुप्त ने उत्तर में कहा—"यह मुकुट अब मुझे नहीं चाहिए। इसे तुम अपने ही पास रख

लो।" यों कहकर देवगुप्त ने मेघनाथ को वापस भेज दिया।

यह कहानी सुनाकर बेताल ने राजा से पूछा— "राजन्, अद्भुत मुकुट का रहस्य प्रकट करना अस्वीकार करके देवगुप्त अपना सर्वस्व खो बैठा। आखिर उस का रहस्य मेघनाथ को बताकर उसने उस मुकुट को क्यों छोड़ दिया? अद्भुत मुकुट के द्वारा राजा की पुत्री के साथ विवाह करना ही तो देवगुप्त का प्रमुख हेतु था न? इस स्थिति में जब मेघनाथ अपनी इच्छा से उसे वह मुकुट सौंपने आया, तब देवगुप्त ने उसे ग्रहण करना क्यों अस्वीकार किया? मुकुट के दुष्ट प्रभाव से सब से पहले नंदगुप्त, फिर देवगुप्त और अंत में मेघनाथ दरिद्र बन गये—ऐसा अगर

मान लिया तो उसके खरीदनेवाले अमीर आदमी के बारे में क्या कहा जाए ? उसकी तो किसी प्रकार की हानि नहीं हुई । मेरी इन शंकाओं का समाधान आप जानकर भी अगर नहीं करेंगे, तो आप के सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे ।"

इस पर विक्रमादित्य ने समझाया— " यह अद्भुत मुकुट कोई विचित्र महिमा वा दुष्ट प्रभाववाला दिखाई देता है। यह बात स्पष्ट है कि जो उस मुकुट को ग्रहण करता है, वह राजोचित वस्त्रभूषण प्राप्त करके राजा की पुत्री के साथ विवाह नहीं कर पाता है । अपने अनुभव के आधार पर देवगुप्त ने यह बात जान ली और फिर मेघनाथ के साथ प्रतिशोध लेना चाहा । क्योंकि उसने उसके साथ शत्रुता मोलकर उसकी सारी संपत्ति हड़प ली और उसको दरिद्र बनाकर छोड़ दिया था । इस लिए उसका बदला लेनेके विचार के ही देवगुप्त ने मुकुट का रहस्य मेघनाथ को बताकर उसे सौंप दिया था । मुकुट के प्रभाव ही से मेघनाथ अपना सर्वस्व खो बैठा था । जब उसे वास्तविक बात का पता चला तब मेघनाथ ने सोचा— क्यों न इस मुकुट को देवगुप्त को सौंपकर उसे दुबारा कंगाल बना दिया जाए ? देवगुप्त ने अच्छी तरह सबक़ लिया था; इस लिए उसने मेघनाथ से मुकुट प्राप्त करना स्वीकार नहीं किया ।

अब बात रही उस अमीर आदमी की जिसने देवगुप्त से मुकुट खरीद लिया था । उस अमीर आदमी से पहली बार मुकुट खरीदने पर भी मेघनाथ का किसी प्रकार का नुकसान नहीं हुआ था । इस का कारण यह है कि तब वह उस अद्भुत मुकुट का रहस्य जानता नहीं था । इसका अर्थ यह हुआ कि यह मुकुट उन लोगों को नुक़सान पहुँचाता है और उन्हें दरिद्र बनाता है जो उसके रहस्य को जातने हैं । जो उस रहस्य को नहीं जानता, सिर्फ़ मुकुट अपने पास रखता है, उसकी कोई हानि नहीं होती ।"

इतना कहकर राजा चुप हो गया । फिर बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा ।

(कल्पित)

अज्ञान पंडित

चीन में सरकारी नौकरियाँ उन्हीं को प्राप्त होती थीं, जो विद्वान होते थे और तदर्थ आयोजित परीक्षा में उत्तीर्ण होते थे। सत्रह शताब्दियों पहले की बात है, पावोस्वान नाम का एक युवक विद्वान परीक्षा में शामिल होने के इरादे से राजधानी की ओर चल पड़ा। रास्ते में उसे एक और युवक विद्वान मिला।

नये युवक के सीने में बेशुमार दर्द हो रहा था। इस की यह हालत देखकर पावो रुका और उसकी सेवा-सहायता में लग गया। लेकिन पावो की सारी सेवा व्यर्थ रही। युवक के सीने का दर्द बढ़ता ही रहा, यहाँ तक कि शीघ्र ही उसका देहावसान हो गया।

पावो को मृत युवक का नाम भी मालूम न था। उसके पास दस चाँदी के सिक्के और उसकी रचनाएँ लिखे काग़ज़ों का एक पुलिन्दा था। पावो ने काग़ज़ के उस पुलिन्दे को युवक के शव पर ओढ़ा दिया और चाँदी का एक सिक्का खर्च करके अंत्येष्टि-क्रिया संपन्न की। बाकी सिक्के शव के सिरहाने रखकर शव-पेटिका को बंद करके उसे गढ़वा दिया।

पावो ने मृतात्मा के प्रति आँसू बहाकर तर्पण किया। और फिर उसे उद्देश्य करके कहा—"अगर संभव हुआ तो तुम अपने सगे-संबन्धी तथा घरवालों को अपना पता दो। मुझे एक ज़रूरी काम के लिए जाना है। मैं शीघ्र ही जा रहा हूँ। मैं जो कुछ कर सकता था, उतना मैंने तुम्हारे लिए किया। इससे अधिक मैं कुछ कर नहीं सकता, क्षमा करो।" फिर पावो वहाँ से चला गया।

अब पावो राजधानी पहुँचा, परीक्षाओं में संमिलित होकर ऊँची श्रेणी प्राप्त की। इस से उसकी कीर्ति सब दूर फैल गई।

पावो जब राजधानी में रह रहा था, तब एक

एक चीनी लोक कथा

दिन एक अजब घटना घटी। किसी अज्ञात व्यक्ति का एक घोड़ा पावो के आश्रय में आ गया। आश्चर्य यह था कि वह पावो को ज़रा भी न छोड़ता था और और किसी को पास फटकने न देता था। लाचार होकर पावो ने उसे अपने पास रख लिया।

राजधानी से लौटते समय पावो रास्ता भटक गया। अंधेरा हो चला था, पास ही में उसे एक संभ्रान्त परिवार का मकान दिखाई दिया। पावो ने सोचा कि वह रात उस मकान में रह ले। अपना पता लिखा काग़ज़ नौकर के हाथ मकान-मालिक की ओर रवाना करते हुए नौकर से कहा— "सुनो भाई, अपने मालिक से कह दो कि मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ।"

नौकर ने घोड़े को बारीकी से परखकर देखा। फिर मकान में जाकर मालिक के हाथ काग़ज़ देते हुए कहा— "मालिक, यह जो आदमी आया है, लगता है उसी ने हमारा घोड़ा हड़प लिया है।"

काग़ज़ पर 'पावोस्वान' नाम पढ़कर मकान-मालिक ने नौकर से कहा— "अरे, यह तो एक महान् विद्वान व्यक्ति है। जाओ, उसको अन्दर ले आओ।"

पावो ने अपना समग्र वृत्तान्त बताते हुए मकान-मालिक से कहा— "मैं जब राजधानी की ओर जा रहा था, तब रास्ते में एक युवक विद्वान से मेरी भेंट हुई। वह छाती के दर्द से परेशान था, मेरी सारी सेवाओं के बावजूद वह मर गया।"

"संभवतः वह मेरा ही पुत्र होगा।" मकान-मालिक ने कहा।

दूसरे दिन मकान मलिक मृत व्यक्ति की समाधि के पास पहुँचा। उसने खोदकर शव-पेटिका को बाहर निकालकर देखा तो उसे मालूम हो गया कि वह शव उस के पुत्र का ही है।

अपने पुत्र के प्रति पावो ने जो उपकार किया था, उससे मकान-मालिक को बहुत संतोष हुआ। उस भलेमानस ने राजा के दरबार में जाकर पावो की सिफ़ारिश की। पावो की एक उच्च न्यायाधिकारी के पद पर नियुक्ति हुई। पावो ने उसे बड़ी योग्यता के साथ निभाया।

काव्य-कथाएँ

मणिमय नूपुर—१

कावेरी नदी का जहाँ समुद्र में संगम होता है, वहाँ पर लगभग दो हज़ार वर्ष पहले पूम्पुहार नाम का एक नगर बसा हुआ था। चोल वंश के राजाओं की राजधानी यही पूम्पुहार थी। यहाँ पर अनेक मंदिर तथा भवन बनाये गये थे।
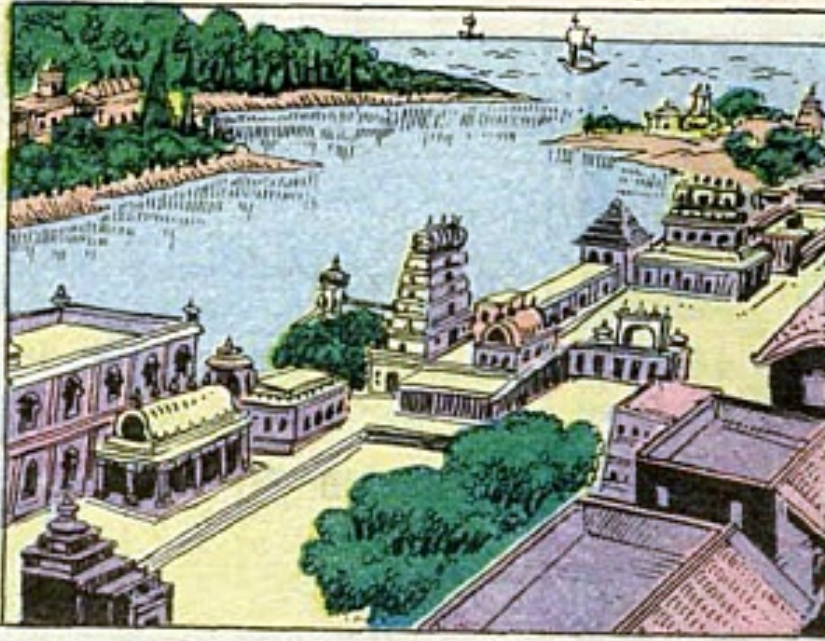
धर्मपरायण तथा न्यायप्रिय चोल राजाओं ने अपने शासन-काल में अनेक कलाओं का पोषण किया था। उस समय जनता सुखी और संपन्न थी। भारत के विभिन्न प्रदेशों से ही नहीं, ग्रीस, रोम जैसे विदेशों से भी कई पंडित व राजदूत चोल राजाओं के दर्शनार्थ आया करते थे।
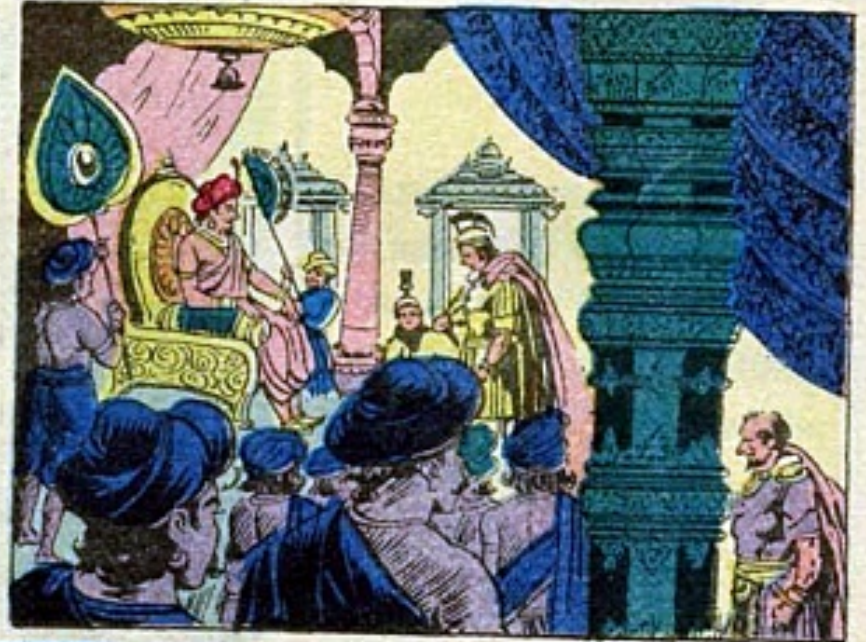
पूम्पुहार बंदरगाह में सुदूर देशों से जहाज़ आकर अपना लंगर डालते थे। इस संपन्न नगर में अनेक विश्वासपात्र व्यापारी व्यापार करते थे। अनेक विदेशी व्यापारी उनके साथ व्यापार-वाणिज्य बड़े उत्साह से करते।
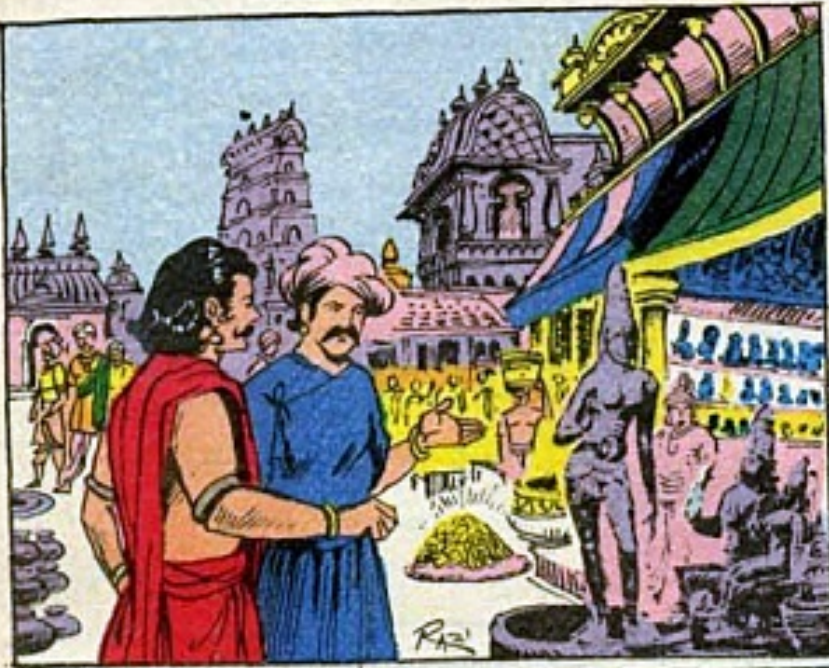
अनेक जौहरी पूम्पुहार नगरी की वीथियों पर हीरे, माणिक, मोती आदि रत्नों के ढेर सजाकर व्यापार किया करते थे । नगरी अपनी धन-संपत्ति से सुशोभित थी

पूम्पुहार के एक आलीशान महल में मानैकास नाम का एक समुद्री व्यापारी रहता था । उसके एक बेटी थी, जिसका नाम था कण्णगी । कण्णगी का रूप-लावण्य अद्वितीय था । उसे देख लोग उसे लक्ष्मी कहते । वह अत्यन्त गुणवती थी ।

मानैकास के महल के पास मासात्तुवास नाम का एक और व्यापारी रहा करता था । उसका लड़का कोवलन अत्यन्त रूपवान तथा गुणी था । वह बड़ा दानी था, गरीबों व अनाथों को दिल खोलकर दान देता था ।

मानैकास और मासात्तुवास इन दोनों में गाढ़ी मित्रता थी । इस मित्रता को और दृढ़ बनानेके लिए दोनों ने संकल्प किया कि कण्णगी और कोवलन का विवाह संपन्न किया जाए । उनके सभी रिश्तेदार और मित्रों ने इस रिश्ते को बहुत पसंद किया ।

बुजुर्गों ने विवाह का मुहूर्त निश्चित किया । उस दिन मंगल वाद्यों के साथ बड़ा जुलूस निकला और वर-वधू को विवाह-मंडप में लाया गया ।

पुरोहितों ने वेद-मंत्रों का पठण किया । वर-वधू ने अग्नि-देव की प्रदक्षिणा की । विवाह-मंडप में आये रिश्तेदार और अतिथियों ने वधू-वर को फूल और सुगंधित द्रव्य देकर आशीर्वाद दिये ।
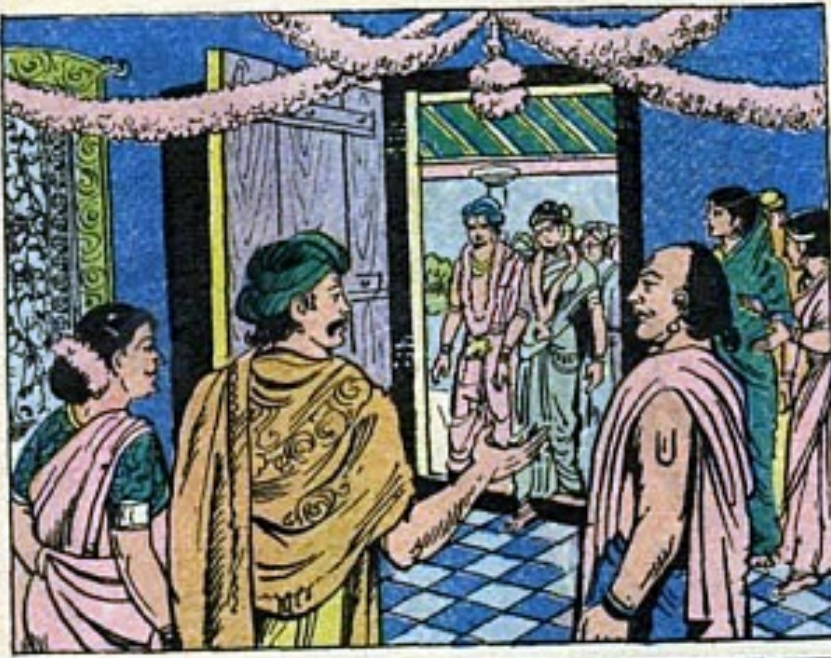
नये वर-वधू के निवास के लिए एक सुरुचिपूर्ण महल बनवाया गया, ताकि वे अतिथियों और अभ्यागतों का समुचित स्वागत-सत्कार कर गृहस्थ-धर्म का अच्छे ढंग से निर्वाह कर सकें। कण्णगी-कोवलन दंपति सुख और संतोष का जीवन व्यतीत करने लगे।

उसी नगर में एक अन्य स्थान पर माधवी नाम की एक रूपवती नर्तकी निवास करती थी। उसने सुप्रसिद्ध आचार्यों के संपर्क में रह कर श्रद्धा और भक्ति-भाव से नाट्य और नृत्य-कला का परिश्रमपूर्वक अध्ययन किया था।

अपने अध्ययन के समाप्त होने पर माधवी ने एक दिन नगर के प्रमुख अधिकारियों का स्वागत करके उनके सम्मुख अपनी कला का प्रदर्शन प्रारंभ किया।

(सशेष)

उपदेश

एक राजा के दरबार में सुधाकर नाम का एक सेवक था। अपने सगे-संबंधी तथा परिचितों के प्रति वह विशेष स्नेह और प्रेमभाव रखता था। इस लिए एक बार समय मिलते ही उसी गाँव में रहने वाले अपने छोटे नाना के यहाँ पहुँचा। छोटे नाना का बड़ा लड़का गोपाल गुरुकुल का स्नातक था, फिर भी वह अपने घर पर रहकर खेतीबाड़ी के काम में नित्य दत्तचित्त रहता।

सुधाकर स्वभाव से ही विशेष विनयशील था। वह हमेशा बड़ों का आदर करता और कभी अपनी बड़ाई नहीं करता था। यथासंभव अड़ोसी-पड़ोसियों की सहायता करनेका मानो उसने व्रत लिया था।

छोटे नाना ने सुधाकर के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहा—"देखो बेटे, तुम शहर के निवासी हो, ऊँचे पद पर हो, फिर भी तुम बड़े ही सरल और सुशील हो। पर गोपाल की बात और है! किसी गाँववाले से उसकी पटती नहीं, हमेशा कोई-न-कोई बात लेकर वह घरवालों की नुक्ताचीनी करता रहता है। वह हमारी एक नहीं मानता। तुम उसको कुछ समझाने की कोशिश करोगे ?"

उसी दिन शाम को सुधाकर ने गोपाल के साथ थोड़ी बातचीत करके उसके बारे में कुछ जानकारी हासिल की।

वास्तव में बात यह थी कि खेतीबाड़ी करनेवाले गाँव के निवासियों में गोपाल ही सब से अधिक सुशिक्षित था। इस लिए वह गाँववालों से यह अपेक्षा करता था कि सब कोई उसकी इज़्ज़त करें। वह खुद खेतीबाड़ी की ख़ासी अच्छी जानकारी रखता था। इस कारण वह चाहता था कि सब लोग उसकी तारीफ़ करें। पर वह स्वयं कभी किसी की मदद नहीं करता था। और फिर भी चाहता था कि ज़रूरत पड़ने पर सब

उसकी सहायता करें। अगर कोई मुसीबत में पड़ जाता तो गोपाल उसका मज़ाक उड़ाता था, पर यदि वह स्वयं कठिनाइयों में हो तो लोगों से मदद की अपेक्षा रखता था। अगर दूसरों का हित हो जाता तो वह उसे सहन नहीं कर पाता था, पर यदि उसका कल्याण हो जाए तो इच्छा रखता था कि सब को प्रसन्नता हो। दूसरों के दोष या कमियाँ देखकर उनकी निर्दयता से आलोचना करता था, मगर उसके किसी दोष पर कोई इशारा भर करे तो वह गुस्सा हो जाता था।

सुधाकर ने गोपाल को समझाया— "गोपाल, दरअसल ग़लती तो तुम्हारी ही है। सब से पहले तुम्हें अपने में सुधार लाना होगा, सहनशील बनो, मन में उपकार की भावना रखो। तभी तुम दूसरों के अन्दर उत्तम गुण देख सकते हो। अगर तुम ऐसा करो तो सभी तुम्हारा आदर करेंगे। ज़रा सोचके तो देखो।"

सुधाकर का उपदेश सुनकर गोपाल गुस्से में आकर बोला— "साफ़ साफ़ बताओ, तुम क्या कहना चाहते हो ?"

"यही कि तुम्हारे भीतर अहंकार, लालच, स्वार्थ,ईर्ष्या, क्रोध, लोभ आदि अनेक दुर्गुण हैं। तुम उनको छोड़ दो, तो तुम्हें सारी दुनिया एकदम सुंदर प्रतीत होने लगेगी !" सुधाकर ने निर्भय होकर नेक नसीहत दी।

अपनी आलोचना सुनकर गोपाल भड़क उठा और गरज कर बोला— "सुनो सुधाकर, तुम मेरे घर पर अतिथि बन कर आए हो, इस लिए चुप रहो। और कोई ऐसी बातें मुझ से कहता, तो तुरन्त उसके दाँत तोड़ देता। समझे ? उपदेश

सुनने का मैं आदी नहीं हूँ, मैं उपदेश देनेवालों से घृणा करता हूँ ।"

गोपाल का उत्तर सुनकर सुधाकर को दुख हुआ, पर उसने अपने आप को समझाया कि गोपाल जैसे व्यक्ति को उपदेश देने का साहस करने पर उसे उचित दण्ड भी मिलना ही चाहिए।

दूसरे दिन उस गाँव में महानन्दस्वामी नाम के एक योगी पधारे। वे गाँवों में घूम-घूमकर वेद और दर्शन का सार लोगों को समझाते रहते हैं। उसी दिन रात को गाँव के मंदिर के प्रांगण में एक बृहत् सभा का आयोजन हुआ, जिसमें महानन्द-स्वामी उपदेश देनेवाले थे।

वैसे सुधाकर ऐसे लोगों के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति नहीं रखता था, लेकिन गोपाल ने उसे समझाते हुए कहा— "सुनो भाई, पहले दिन हमारे परिवार के सभी सदस्यों को उस सभा में प्रथम पंक्ति में बैठने का ख़ास प्रबंध किया गया है। इस लिए आज हमारे परिवार के सब लोगों को स्वामीजी का उपदेश सुनने के लिए अवश्य जाना चाहिए। हम इस गाँव के प्रमुख व्यक्ति जो ठहरे। हमें विशेष आदर मिल रहा है। तुम भी ज़रूर चलो।"

सुधाकर गोपाल की बात को टाल न सका। सभा में उपस्थित हो गया।

सभा-मंडप गाँववालों से खचाखच भर गया। तब स्वामीजी ने अपना भाषण शुरू किया। सदाचार की व्याख्या करते हुए स्वामीजी ने लगभग वे ही सारी बातें कहीं जो पिछले दिन सुधाकर ने गोपाल को सुनायीं थीं। उन सब बातों को सुनकर सुधाकर मन-ही-मन थोड़ा डर

गया कि गोपाल कहीं गुस्से में आकर स्वामीजी की निंदा न कर बैठे ।

सब गाँववालों ने बड़े ध्यान से स्वामीजी का उपदेश सुना। उन्होंने अपने व्याख्यान के दौरान में गाँव के लोगों की समझ में आनेवाली अनेक छोटी-मोटी बातें कहीं और दृष्टान्त पेश किये। पर वे सारी बातें लगभग ऐसे मालूम हुईं कि मानो गोपाल को ही दृष्टि में रखकर बताई गई हों। इस लिए सुधाकर बाद में स्वामीजी के व्याख्यान की प्रशंसा करने से कुछ डर-सा गया ।

पर अजब बात यह हुई कि गोपाल ने घर लौटकर स्वामीजी के व्याख्यान की खूब तारीफ़ की और सुधाकर से निवेदन किया— "देखो, भाई, हम हर रोज़ स्वामीजी का व्याख्यान सुनने के लिए मंदिर जाया करेंगे। स्वामीजी के व्याख्यानों के समाप्ति तक तुम यहीं रह सकते हो ?"

सुधाकर मन-ही-मन सोचने लगा— "मैं ने गोपाल को जो बातें बता दीं, उन्हें सुनकर वह चिढ़ गया था। पर आश्चर्य की बात है कि स्वामीजी के मुँह से वे बातें सुनकर वह नाराज़ नहीं हुआ, बल्कि उनकी प्रशंसा कर रहा है। इस का अर्थ यह हुआ कि स्वामीजी के कथन में वह विशेषता है जो मुझ में नहीं है।" इस लिए सुधाकर दूसरे दिन स्वामीजी से एकांत में मिला और अपना संदेह स्वामीजी के सामने पेश किया।

महानन्द स्वामीजी ने मुसकुराते हुए समझाया— "बेटा, मैं सब को मिलाकर हित-अहित की बातें बताता हूँ। इसी लिए मेरी बातों ने गोपाल के मन को दुख नहीं पहुँचाया। पर तुम ने केवल गोपाल ही को उद्देश्य कर उपदेश दिया, इस कारण वह उसके दुख का कारण हुआ। मैं मानता हूँ कि तुम मेरा आशय समझ गये।"

स्वामीजी के मुँह से अपने उपदेशों की व्याख्या सुनकर सुधाकर ने मनुष्यों की प्रकृति को अच्छे ढंग से समझ लिया। स्वामीजी का कथन सचमुच यथार्थ था। स्वामीजी ने बड़े पते की बात कही थी। सुधाकर के मन पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा। स्वामीजी को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके सुधाकर घर लौटा।

विकद्रु की बातें सावधानी से सुनकर कृष्ण ने सुझाव पेश किया— "इस के लिये फिलहाल एक ही उपाय है। मैं और बड़े भैया तत्काल यहाँ से निकल कर जरासंध वगैरहों की देखादेखी दक्षिण दिशा में निकल पडेंगे। उस हालत में मथुरा नगरी का घेरा उठाकर वह हमारा पीछा करेगा। हम लोग विन्ध्याद्री आदि पर्वतों में स्थित दुर्गों का आश्रय लेकर जरासन्ध से लड़ते रहेंगे। हमारे ऐसा करने से हमारे वंशधर और राज्य की जनता को भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचेगी। हम यहीं रहे तो यहाँ युद्ध छिड़ेगा। मथुरा नगरी के वासियों को भी तक़लीफ हुए बिना न रहेगी। बेकार की हत्याएँ होंगी और इस नगरी में अशान्ति फैलेगी।"

कृष्ण के इस सुझाव का सब ने स्वीकार किया। इस के बाद कृष्ण-बलराम निःशस्त्र होकर मथुरा से निकल पड़े। फिर साहस पूर्वक जरासन्ध के पास जाकर बोले, "हे मगधराज! बताइये, आप विविध देशों से सेनाएँ लेकर यहाँ पर क्यों पधारे हैं? हम भी आप के कार्य में आप की सहायता करेंगे। अगर आप को युद्ध ही करना है, तो हमें कोई आपत्ति नहीं है। पर अगर कोई सत्कार्य करना हो तो उसमें आपकी मदद करने में हमें अधिक प्रसन्नता होगी।"

कृष्ण और बलराम के आगमन की वार्ता सुनकर कवच, धनुष और तरकस धारण कर जरासन्ध उनके सामने आ पहुँचा और दृढ़ स्वर में बोला, "मैं ने सुना है कि तुम दोनों महान् बलशाली हो। इसलिये तुम्हें युद्ध में पराजित करने के लिये मैं यहाँ आया हूँ। तुम दोनों के

प्राण लिये बगैर मैं यहाँ से हटनेवाला नहीं हूँ। इसलिये तुम भी युद्ध के लिये सन्नद्ध होकर आ जाओ। बड़े आये सत्कार्य करनेवाले! यद्ध में पराजित होना पड़ेगा इसका अभी से निश्चय हो गया? हम ये सब चिकनी-चुपड़ी बातें नहीं सुनना चाहते हैं। हम को तुम से युद्ध करना है। देखना है कौन अधिक बलशाली है? हम या तुम?"

जरासन्ध की बातें सुनकर ज़रा भी विचलित हुए बगैर वहाँ से निकल कर कृष्ण बलराम दक्षिण की ओर चल पड़े। अनेक देश व नगर पार करते हुए वे दोनों विन्ध्याचल के निकट पहुँचे। वहाँ से उन्होंने सह्याद्रिपर एक जंगल में एक महा वटवृक्ष के नीचे बैठे परशुराम को देखा। परशुराम का तेजस्वी रूप देख कर उन्हें अतीव प्रसन्नता हुई। ऐसा व्यक्तित्व पहले उन्होंने कभी नहीं देखा था। उन्होंने परशुराम को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और उनकी ओर एक टक निहारने लगे।

परशुराम वहाँ बैठे शिवजी की अर्चना कर रहे थे। एक ओर होमधेनु उसके बछड़े के साथ बँधी हुई खड़ी थी। उसकी एक ओर अरणी, कमण्डलु तथा प्रज्वलित अग्नि था और दूसरी ओर एक महाधनु, बाण, खड्ग और परशु रखे हुए थे। इस प्रकार ब्राह्मण एवं क्षत्रीय तेज से शोभायमान परशुराम के समीप जाकर बलराम और कृष्ण ने उनको इस प्रकार प्रणाम किया कि, जिससे हाथों का स्पर्श परशुराम के सिर को हो जाय। फिर दोनों ने उनका स्तोत्र-पाठ किया।

कृष्ण ने अपना वृत्तान्त संक्षेप में सुनाकर उनसे कहा, "महात्मा, हम यमुना के तटपर स्थित मथुरा नगरी के निवासी हैं। यादव-शिरोमणी वसुदेव हमारे पिता हैं। मेरा नाम कृष्ण और मेरे इस बड़े भैया का नाम बलराम है। कंस के भय के कारण हमारे पिता ने हमारे जनम से ही हमको गोकुल में भेज दिया। वहीं पलकर हम बड़े हो गये। इसके बाद मथुरा लौटकर मैंने कंस का संहार किया। कंस का राज्य हमने उनके पिता को सौंप दिया। कंस के वध के कारण हम से कुपित होकर भारी सेना के साथ जरासन्ध ने हम पर हमला किया है। हम तो बेहथियार हैं, इसलिये जरासन्ध के साथ युद्ध करने की स्थिति में नहीं

हैं। ऐसी हालत में उनकी देखादेखी हम दोनों पैदल चलकर इस ओर आ गये हैं। कृपया आप इस समय हमारे कर्तव्य का बोध कराके हम पर अनुग्रह कीजिये। हम ने जरासन्ध से समझौता करने का प्रयत्न किया। पर सब व्यर्थ ! उनको हम से युद्ध ही करना है। सत्कार्य करनेकी उनकी बिलकुल इच्छा नहीं है।"

यह सारा वृत्तान्त सुनकर परशुराम ने कहा, "तुम दोनों को इस ओर दक्षिणापथ में चले आते हुए जरासन्ध ने स्वयं देख लिया है, इसलिये सेना लेकर वह निश्चय ही इस दिशा में तुम्हारा पीछा करता हुआ आ जाएगा। उस को पराजित करने के लिये अधिक अनुकूल एक दुर्ग है। मैं तुम्हारे साथ चलकर तुम लोगों को वहाँ पहुँचा दूँगा। कंस का वध करनेवाले को इस समय हिम्मत से काम लेना चाहिए। मैं तुम्हें जिस दुर्ग पर ले जाऊँगा, वहाँ से तुम जरासंध का बराबर सामना कर सकोगे। ध्यान में रखो अन्यायी और पापियों की कभी जीत नहीं होती। मैं तुम्हें आर्शीवाद दूँ।"

वे तीनों वहाँ से निकल पड़े। कुछ दिन की यात्रा के बाद वे गोमंत नामक पर्वत पर पहुँचे।

'गोमंत एक महा-पर्वत है। उसपर केवल एक ही शिखर है। उस शिखर पर पहुँचने पर ऐसा प्रतीत होगा कि सूर्य व चन्द के उदयास्त के स्थान समीप में ही हैं। अनेक द्वीपों के साथ समुद्र भी वहाँ से दिखाई देगा।' परशुराम ने ये सारी बातें बलराम और कृष्ण को बताईं।

इस के उपरान्त परशुराम ने उन्हें समझाया- "यदि इस पर्वतपर से युद्ध करोगे तो जरासन्ध और उसके साथ आये हुए सभी राजा परास्त होकर यहाँ से भाग जायेंगे।"

इस निर्णय के बाद वे तीनों शीघ्र गति से पर्वतपर चढ़ गये।

"तुम्हारे शत्रु जब यहाँ समीप पहुँचेंगे, तब उनकी ध्वनियाँ सुनाई देंगी। पर याद रखो, तुम्हें अत्यन्त सावधान रहना होगा। अच्छा, अब मैं चला। मैंने यथासंभव तुम्हारी सहायता की है। मैं तुम्हारे पराक्रम को जानता हूँ। जीत तुम्हारी ही होगी।" परशुराम ने कहा। बलराम और कृष्ण ने सादर उन को बिदा किया।

कृष्ण-बलराम ने उस पर्वतपर स्थित गुफ़ाओं

तो हम इस पर्वत को ही चूर-चूर कर के हमारे मनोरथ सिद्ध करेंगे और उसके बाद ही यहाँ से लौटेंगे ।"

"कहा जाता है, कि इस पर्वत पर चढ़ना देवताओं को भी संभव नहीं है । रथोंपर विश्राम करनेवाले हमारे राजा क्या इस पर्वत का आरोहण कर सकेंगे ? संख्या में हम अधिक हैं इस विचार से दर्प में आकर टूट पड़ना युद्ध की नीति नहीं है और न ही उपाय भी है । हमें बलराम तथा कृष्ण को बच्चे मात्र नहीं मानना चाहिये । इस समय दुर्ग उनके अधिकार में है । इसलिये मेरा सुझाव है कि युद्ध करने की अपेक्षा इस पर्वत के चतुर्दिक घेरा डालकर उन्हें रसद पहुँचने से रोक देना बुद्धिमानी का कार्य होगा । एक और उपाय भी है । अगर हम पहाड़ के चारों तरफ़ आग लगा देते हैं तो वे उसका प्रतिरोध नहीं कर पाएँगे और साथ ही वे मुसीबत में फँस जायेंगे ।" शिशुपाल ने अपनी सलाह प्रकट की ।

चेदिराज शिशुपाल का सुझाव जरासन्ध को उत्तम प्रतीत हुआ ।

सैनिकों ने पर्वत के चतुर्दिक सूखे वृक्ष, झाड़-झंखाड़ आदि डालकर हवा के रुख के अनुसार उस में आग लगा दी और उसके शोलों पर लकड़ी और घास फेंकने लगे । थोड़ी ही देर में पर्वत के चारों ओर दावानल जैसे आग फैल गई । लपटें, शोले व धुआँ आसमान में फैल गये ।

उस दृश्य को देखकर बलराम ने कृष्ण से

और वृक्षों का अवलोकन करते हुए अपना समय बिताया । इतने में जरासन्ध की सेना बड़ी शान से वहाँ आ पहुँची और उस पर्वत को चारों तरफ़ से उन्होंने घेर लिया । उस सेना में जरासन्ध के साथ शिशुपाल, रुक्मि, चेकितान, बाल्हिक, द्रुपद, विराट, उत्तमौज, जयद्रथ आदि पराक्रमी राजा थे ।

जरासन्ध ने इन सब राजाओं को बुलाकर सभा की और कहा— "हमें समाचार मिला है कि, यादवकुमार इस पर्वत पर आश्रय ले चुके हैं । हम पर्वत पर चढ़ने के लिये यहाँ के झाड़-झंखाड़ और पत्थर-कंकड साफ़ करवा देंगे। जहाँ तहाँ ढेल-बाँस चलाने वालों को नियुक्त करेंगे । ऊपर से कोई भी झाँककर देखें तो उनपर हम बाण और भाले फेंकेंगे । ज़रूरत महसूस हुई,

कहा, "देखते हो न, हमारे कारण इस पर्वत की कैसी दुर्दशा हो रही है ! इस हालत को हम ऐसे ही देखते रहे, तो हमारे लिये इससे बढ़कर अपयश और क्या हो सकता है ? मैं इसी वक्त अपने बाहुबल से जरासन्ध का संहार कर डालूँगा। इतने सारे देशों के राजा ऐसी भारी सेना के साथ हम से युद्ध करने चले आये हैं। मैं उन पर ऐसा विनाश ढाऊँगा जिस से पृथ्वीपर एक भी राजा बच न रहें। यह कहकर बलराम पर्वतपर से तलहटी में फैली सेना के बीच कूद पड़े। उसी क्षण कृष्ण ने भी बलराम का अनुकरण किया। दो मंदार पर्वत अचानक समुद्र में गिर जाये, तो जैसी हलचल मच जाएगी उसी प्रकार जरासन्ध की सेना में हलचल और भगदड़ मच गयी। सारी सेना तितर-बितर हो गयी। उन के चरणों के आघात से पर्वत ज़रासा धँस गया और पाताल गंगा ऊर्ध्वमुखी होकर ऊपर आयी, जिससे सारी ज्वालाएँ बुझ गयीं।

उन दो भाइयों के शौर्य और साहस से प्रसन्न होकर आकाशस्थ देवताओं ने उन्हें विभिन्न प्रकार के आयुध सौंप दिये। उस समय कृष्ण खुद महाविष्णु और बलराम सहस्त्रफणोंवाले आदिशेष के रूप में प्रतीत हुए। वे दोनों ही क्रोधित हो सेना का अंधाधुंध संहार करने लगे। यह दृश्य देख समस्त राजा भागने लगे।

उन राजाओं में हिम्मत बँधाकर उन्हें वापस बुलाते हुए जरासन्ध ने कहा, "बुजुर्गों का कहना है कि युद्धभूमि में पीठ दिखाकर भागनेवाले

भ्रूणहत्या जैसे पाप के भागी हो जाते हैं। तुम सब तो महान् योद्धा एवं अतिरथी, महारथी हो। ऐसे पराक्रमी तुम लोग, इन दो छोकरों से भय खाकर भाग रहे हो ? तुम लोग ज़रा स्थिर होकर मेरी तरफ़ देखो। मेरे रहते तुम लोगों का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। मैं तुम्हें आश्वासन देता हूँ। मैं इन यादवों को मेरे बाणों का शिकार बना दूँगा।"

जरासन्ध की ये सान्त्वनापूर्ण बातें सुनकर भागनेवाले राजा लौट आये और अपनी अपनी सेना को वापस मोड़कर बलराम को घेर लिया।

अनेक राजा एक साथ कृष्ण-बलराम पर अपने शस्त्रास्त्रों की वर्षा करने लगे। तिसपर भी वे दोनों ज़रा भी विचलित हुए बगैर अपनी चारों

ओर व्याप्त सेना को काट काटकर उसकी लाशों के ढेर लगाने लगे। इस बीभत्स को देखकर राजा भयभीत हो गये और क्रमशः एक एक पीछे हटने लगे। अब कृष्ण ने उन लोगों से कहा, "तुम सब लोग अपने अपने वाहनों पर सवार हो। अनेक युद्ध करके तुम सब युद्धविद्या में प्रवीण बन चुके हो। ऐसे तुम सभी योद्धाओं को ज़मीनपर खड़े होकर युद्ध करनेवाले हम से डरकर युद्धभूमि से भाग खड़े होना शोभा नहीं देता ! तुम लोगों की आड़ लेकर जरासन्ध दूर हटता जा रहा है। उस के लिये तुम लोग ख्वाहम्‌ख्वाह अपनी जान क्यों दे रहे हो। उसको पकड़ लाओ, तब मैं अपना युद्ध-कौशल दिखाऊँगा।"

यह चुनौती सुनकर जरासन्ध का पौरुष जाग उठा और वह उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ कृष्ण एक रथ पर अकेला खड़ा था। कृष्ण को ललकार कर उसने कहा, "मेरे सामने तुम इन राजाओं का अपमान क्यों कर रहे हो ? युद्ध के माने वन में गायों को चराना नहीं होता। कहते हैं कि तुम महान् पराक्रमी और बलवान हो। पर तुम जब अपने बल और पराक्रम मेरे साथ प्रदर्शित करोगे, तभी वे सार्थक होंगे। अब तुम मेरे सामने खड़े होकर मुझसे लड़ो। मैं तुम को क़ाल के हाथों सौंप देता हूँ।"

"तुम मेरा पराक्रम देखना चाहते हो ? देखो, मैं तुम्हारे सामने ही हूँ। शूर वीर कभी प्रलाप नहीं करते। तुम अपने शस्त्र और अस्त्रों की शक्ति दिखाओ।" यह कहकर कृष्ण ने जरासन्ध पर आठ और उसके सारथी पर पाँच बाणों का प्रहार किया। उसी समय बलराम ने जरासन्ध के हाथ के धनुष को अपने बाणों से तोड़ डाला। इसपर जरासन्ध के सेनापति कौशिक और चित्रसेन बलराम तथा कृष्ण पर टूट पड़े। उनके बीच घमासान युद्ध हुआ। युद्ध में घायल होकर सेनापति तथा जरासन्ध एक के बाद एक बेहोश हो गये। आखिर जरासन्ध टिक न सका। वह और उसकी सेना हार कर भाग गये। कृष्ण ने अपनी विजय से खुश हो पांचजन्य को फूँका।

अब बलराम और कृष्ण ने थोड़े समय के लिये गोमंत गिरिपर ही विश्राम करने का निश्चय किया। लेकिन इस बीच एक विचित्र घटना घटी।

जरासन्ध के साथ सभी राजा चले गये।

Sankar
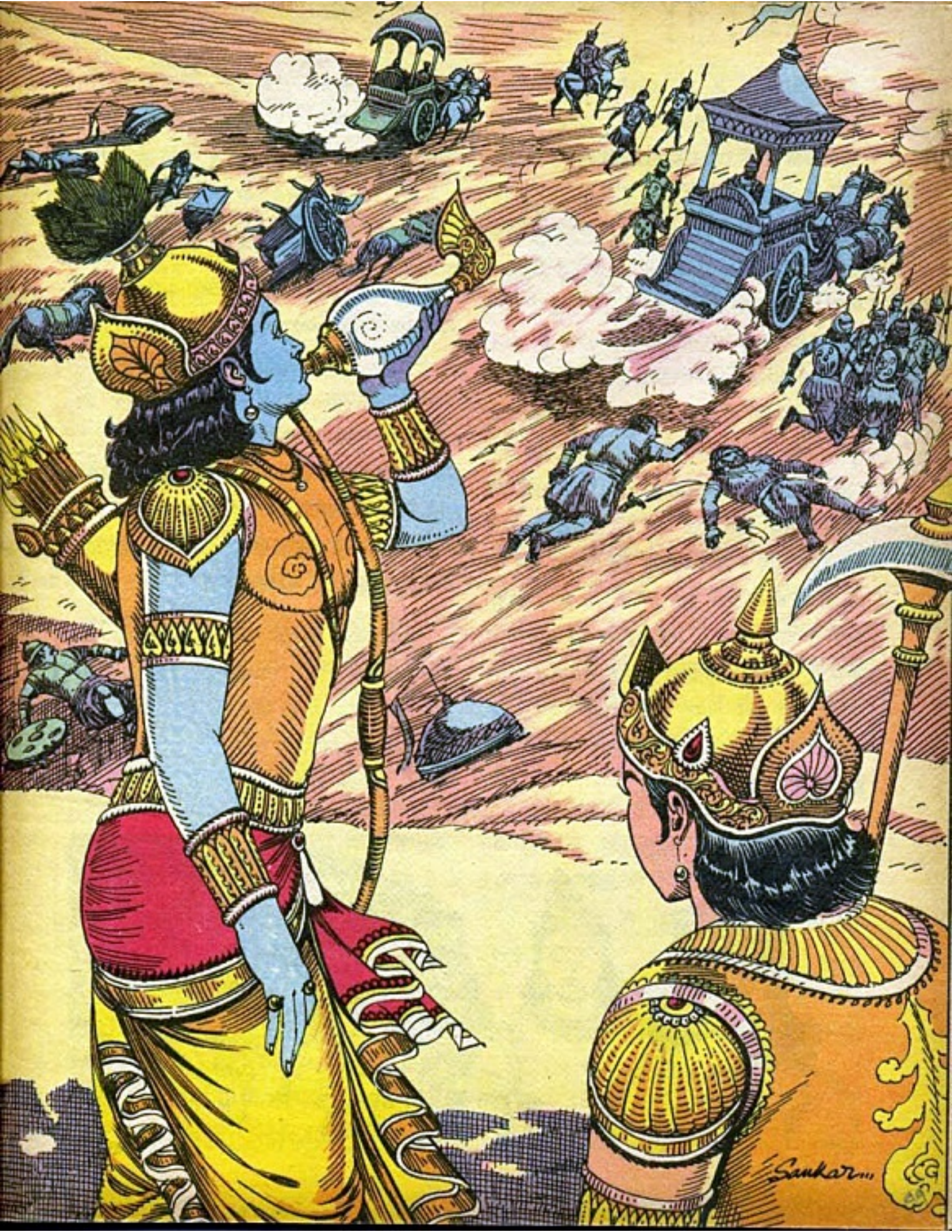
लेकिन चेदी देश के राजा दमघोष याने शिशुपाल के पिता अपनी सेना के साथ पुनः गोमंत को लौट आया और उसने कृष्ण से मिलकर निवेदन किया, "वत्स, मैं तम्हारी फूफी का पति हूँ। मेरा नाम दमघोष है। यह जरासन्ध जो है, वह बड़ा ही धूत है। मैंने उस को बहुत बार समझाया कि तुम कृष्ण के साथ बैर मत मोल लो। मगर उसने मेरी बात अनसुनी कर दी। मैं उस से डरता हूँ, वरना मैं उसका साथ कभी का छोड़ देता। आज उसकी पराजय देखकर मैं अपने हितैषी व मित्रों के साथ तुम्हारे पक्ष में आ गया हूँ। मगर मेरी बात याद रखो—जरासन्ध बलवान है। यह मत सोचो कि उससे तुम्हारा पिंड छूट गया है। लड़ाई के लिये वह फिर कोई न कोई बहाना ढूँढ़ लेगा। तुम इन लाशों के बीच अभी तक क्यों रह रहे हो ? चलो, यहाँ से चले चलो। यहाँ समीप ही करवीरपुर नगर है। उसका शासक सृभाग वासुदेव तुमसे शत्रुता और ईर्ष्या रखता है। उसका दमन करना अत्यावश्यक है। लो, ये दो उत्तम रथ हैं। इन्हें तुम दोनों भाई ग्रहण करो।"

कृष्ण ने स्नेह और प्रेमपूर्ण भावना से दमघोष की ओर अपना हाथ बढ़ाया और कहा—"रिश्तेदारी से पूर्ण प्यार हो, तो ऐसा हो। आप की बातों से मुझे अपार संतोष हुआ है। आप जैसे व्यक्ति का हमें सहारा मिल गया है, इसलिये

हम धन्ये हो गये। आप ने जिस आत्मीयता से हमें मार्गदर्शन किया, उसके लिए हम आप के अत्यन्त ऋणी हैं। आप का स्नेह पाकर हमें अतीव प्रसन्नता हुई। संकट के समय जो रिशतेदार मदद का हाथ आगे बढ़ाते हैं, वे ही सच्चे रिशतेदार हैं हम आप को बार बार धन्यवाद देते हैं। इस समय जो युद्ध हुआ, उसे आप ने देखा न ? इसी पद्धति से हम असंख्य युद्ध कर सकते हैं।"

इसके बाद बलराम और कृष्ण दमघोष के रथोंपर सवार होकर, दमघोष की सेना के साथ चल पड़े। रास्ते में दो पड़ाव डालकर तीसरे दिन प्रातःकाल वे करवीरपुर पहुँचे और वहाँपर उन्होंने अपना शिबिर बनाया।

तीसरा सवाल

विक्रमपुरी का राजा विनोदवर्मा साहित्य व शास्त्र संबंधी चर्चाओं में बड़ी अभिरुचि रखता था । उसका अधिकांश समय पंडित-गोष्ठियों में ही बीत जाता था । राजकाज के नीरस मामलों की अपेक्षा साहित्य-संगीत में, ज्ञान-विज्ञान में राजा को रस था; और वह दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा था । राजधानी में नित्य पंडित-सभाओं का आयोजन होता, शास्त्रार्थ चलता । राजा विद्वान् पंडितों को विविध पुरस्कार देता । इस बात का अनुचित लाभ उठाकर राजा का सेनापति नागवर्मा—जो खुद राजा का भानजा भी था—राज-शासन के कार्यों में अनावश्यक दखल देने लगा और साथ ही नियंत्रण करने के बहाने जनता को नाना प्रकार से सताने लगा ।

कुछ साल बीत गये । अब नागवर्मा के मन में यह कुबुद्धि भी उपजी कि राजा को गद्दी से हटाकर खुद ही उसपर अधिकार कर लें ! अब यह कामना पूरी करने के लिये वह अपनी योजनाएँ बनाने लगा ।

मंत्री माणिक्यवर्मा नागवर्मा की इन गतिविधियों पर निगरानी रखे हुए थे । एक दिन उसने राजा से भेंट करके नागवर्मा के कुकृत्य और षड्यन्त्रों का सप्रमाण ब्योरा दिया और राजा को यह चेतावनी भी दी—"महाराज, आप यदि तत्काल समुचित कार्रवाई न करें, तो राज्य के लिये बहुत खतरनाक धोखा उपस्थित हो सकता है ।"

राजा विनोदवर्मा स्वभाव से अपने रिश्तेदार व बन्धुओं के प्रति गहरा विश्वास और प्रेमभाव रखता था, इसलिये उसने नागवर्मा को बुलवाकर पूछताछ करने के बाद ही उचित निर्णय लेना चाहा ।

अगले दिन राजा ने नागवर्मा को बुलवाकर उसे मंत्री के आरोप सुनाये और डाँटकर पूछा,

महेशचंद्र

"इन आरोपों का तुम्हारे पास क्या समाधान है ? ये आरोप निराधार तो नहीं हो सकते। समुचित चिन्तन के उपरान्त अपना निवेदन पेश करो। और उसके परिणामों के लिए तैयार हो जाओ।"

नागवर्मा ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "प्रभु, क्या मैं आप के अहित की बात सपने में भी सोच सकता हूँ ? असल में सत्य बात यह है कि शासनकार्य सरलतापूर्वक संपन्न हो, आप को विशेष असुविधा न हो और आप पर कुछ बोझ न पड़े—इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर मैं अवकाश के समय खुद जनता के बीच पहुँच कर उनकी समस्याओं तथा आवश्यकताओं की जानकारी हासिल कर, जहाँ तक संभव हो, वहीं पर हल करके लौटता हूँ। उन्हें अपने विचार व्यक्त करने की और परस्पर चर्चा करने की पूरी स्वतन्त्रता है इस कारण जनता पहले की अपेक्षा आप को कहीं अधिक चाहती है और मानती भी है। आप चाहें तो इसे आजमा लीजिए।"

"तुम्हारे और मन्त्री के कथन में कहीं भी साम्य नहीं है।" विनोदवर्मा ने कहा।

"शायद मेरे प्रजोपयोगी कार्य देख मन्त्री के मन में मेरे प्रति ईर्ष्या पैदा हुई है। महाराज, शासन के संबन्ध में जनता की क्या धारणा है इसकी जानकारी प्राप्त करने के लिये कुछ प्रमुख लोगों को राजसभा में बुलवाकर उनके विचार इस बारे में जाने जा सकते हैं।" नागवर्मा ने अपनी सफ़ाई दी।

यह सलाह सुनकर राजा विनोदवर्मा आश्चर्य में आ गया। फिर थोड़ी देर रुक कर बोला, "अच्छी बात है। तुम ढिंढ़ोरा पिटवाकर प्रजा को कल ही
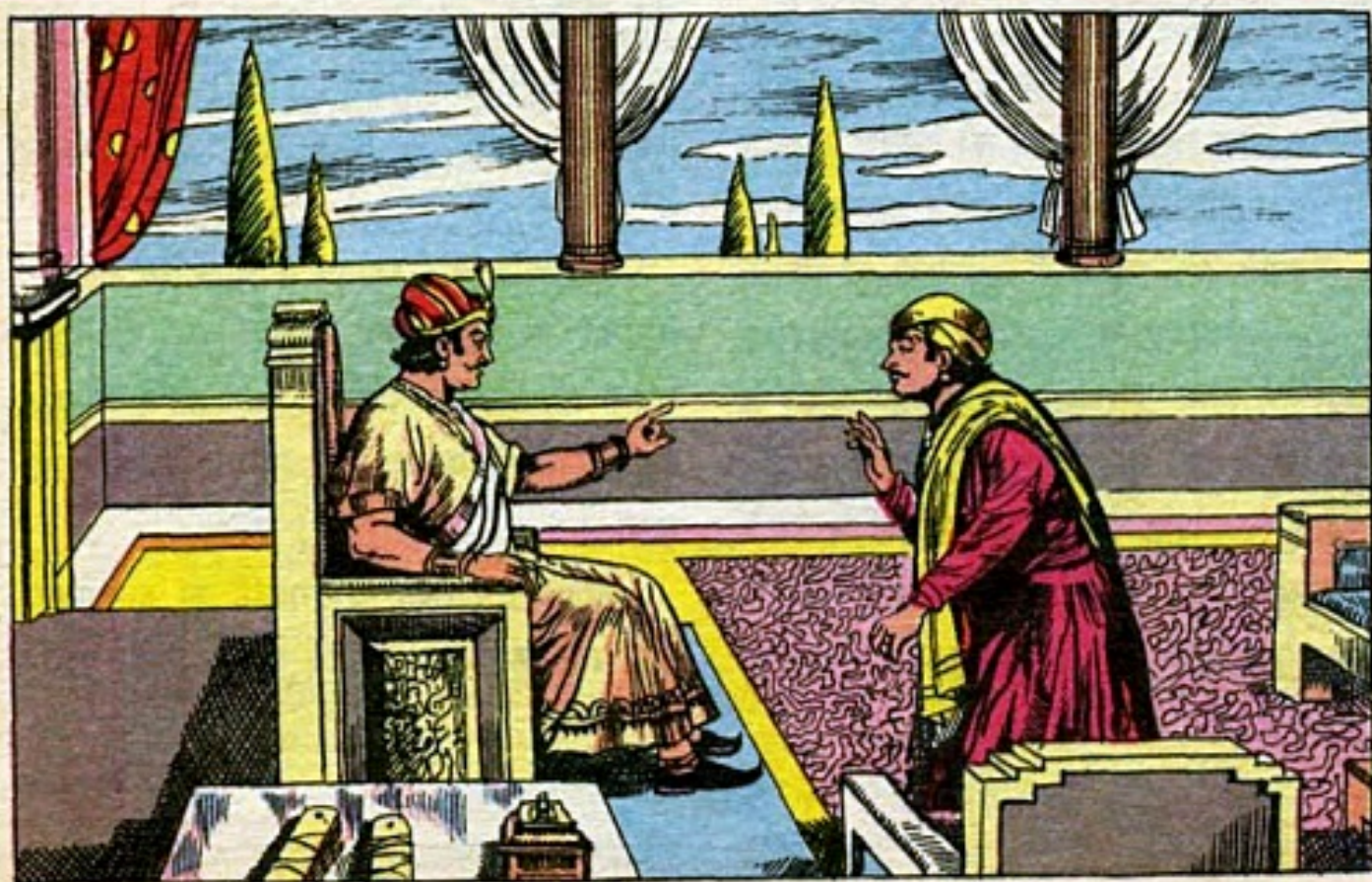
सभा में बुलवाओ

इसके बाद नागवर्मा ने देश के चारों कोनों में इस आशय का ढिंढोरा पिटवाया कि, राजा विनोदवर्मा जनता के सुख दुखों का परिचय पाने के लिये सभा बुला रहे हैं; इसलिये लोग राजदरबार में उपस्थित हो जाए। मगर इसके साथ ही नागवर्मा ने अपने अनुचरों को नगरों व गाँवों में भेज कर इस बात की धमकी भी दिलवायी कि—यदि कल कोई नागवर्मा के विरुद्ध शिकायत करें तो उसके प्राणों की खैर न होगी।

यह धमकी सुनकर अधिकांश जनता ने सोचा कि राजसभा में जाकर नाहक मुसीबत का शिकार क्यों बने ? और कई लोगों ने राजसभा में हाज़िर रहने का अपना विचार छोड़ दिया। इसलिये जो लोग सभा में गये वे सब नागवर्मा के समर्थक थे। उन सब ने राज्य में चल रहे विकास कार्यों का विवरण दिया और बताया कि सब उत्तम कार्य केवल नागवर्मा की सहायता के कारण ही चल रहे हैं। सब ने नागवर्मा की भूरि भूरि प्रशंसा की। मंत्री माणिक्यवर्मा बेचारा यह कुतंत्र देखकर भी असहाय बनकर रह गया।

राजा विनोदवर्मा बहुत ही खुश हुआ और उसने लोगों से पूछा, "इसका मतलब है कि, मैं मान सकता हूँ कि मेरे शासन के संबन्ध में तुम में से किसी को कोई शिकायत नहीं है ?"

इसके उत्तर के रूप में नागवर्मा के समर्थक उत्साह में आकर तालियाँ बजाने लगे। तब उन में से गोविन्द नाम का एक युवक आगे बढ़ा और विनयपूर्वक बोला, "महाराज, मैं आप के शासन की आलोचना करने योग्य कोई बड़ा व्यक्ति नहीं
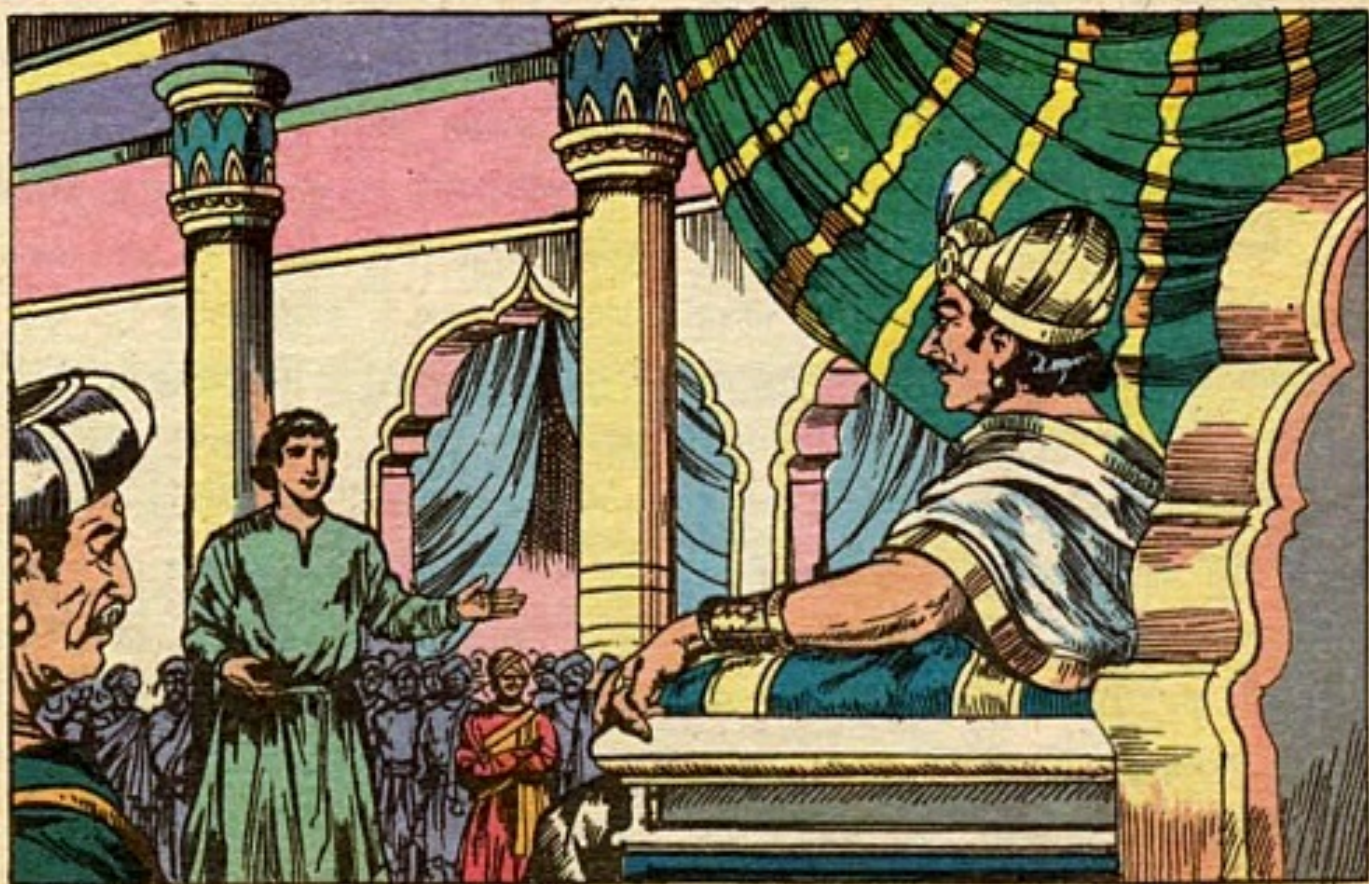
हूँ। फिर भी आपने मौक़ा दिया है, इसलिये मैं आप से केवल तीन सवाल पूछना चाहता हूँ।"

राजाने उस युवक से कहा, "ज़रूर पूछो, क्या सवाल है तुम्हारे ?"

"महाराज, यह प्रचार किया जा रहा है कि हमारे देश की जनता तीनों जून भरपेट भोजन करती है, कोई भूखा-दूखा नहीं है। पर देश की आधी जनता भीख माँगकर अपने दिन क्यों काट रही है ? क्या भीखमँगों को 'जनता' की श्रेणी में नहीं गिना जाता ?" गोविन्द ने पूछा।

राजा ने इस पर नागवर्मा की ओर अपनी क्रोधभरी दृष्टि दौड़ायी। नागवर्मा इस बात पर अपनी सफ़ाई दे, इतने में उसे रोककर राजा ने गोविन्द से कहा, "बताओ, तुम्हारा दूसरा सवाल क्या है ?"

"यह भी कहा जाता है कि देश की सारी प्रजा निर्भय होकर अपना कार्य संपन्न करती रहती है; उन्हें अपने विचार व्यक्त करने की पूरी आज़ादी है। यदि आप इस बात की जाँच करायेंगे तो आप को सच्ची बात मालूम होगी—हज़ारों लोग आप के कारागारों में क्यों सड़ रहे हैं ? उन्हें किस अपराध में बन्दीवास दिया गया है ?" गोविन्द ने पूछा।

इसपर गंभीर हो, राजाने पूछा, "ऐसी बात है ? तब तो बताओ, तुम्हारा तीसरा सवाल क्या है ?"

अब गोविन्द ने हाथ जोड़कर राजा से निवेदन किया, "महाराज, आप से मेरी एक छोटी सी प्रार्थना है। यह तीसरा सवाल संभवतः कुछ दिन बाद मेरे पिताजी यहाँ आकर पूछेंगे। इस के लिये अभी अनुमति दीजिये।"

निर्भयतापूर्वक पूछे गये ये गोविन्द के सवाल सुनकर, राजा ने बड़े प्यार से उसे अपने निकट बुलाया और उस के कन्धेपर थपकी देकर कहा, "इस वक्त हमारे देश को तुम जैसे साहसी युवकों की आवश्यकता है। तुम्हारे पहले दो प्रश्न मैं समझ गया हूँ। उनका जवाब देने की ज़िम्मेदारी मेरी है। मगर तुम्हारा तीसरा सवाल जो है, उसे तुम्हारे पिता के द्वारा पूछे जाने की ज़रूरत नहीं आ पड़ेगी। सवाल पूछे बिना ही मैं समझ गया हूँ। वह सवाल पूछे जाने का मौक़ा तक मैं नहीं देना चाहता।" यह कहकर अपने भटों को बुलाकर

राजा ने नागवर्मा और उसके समर्थकों को तत्काल बन्दी बनाने का आदेश दिया। यह देख मन्त्री माणिक्यवर्मा विस्मय में आ गया।

इसके बाद राजा के आदेशानुसार नागवर्मा और उसके अनुचर कारागार में बन्दी बनाये गये। फिर राजा विनोदवर्मा ने शासन की ज़िम्मेदारी स्वयं अपने हाथ में लेकर राज्य में सुखशान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की।

इस घटना के कुछ दिन बाद मन्त्री माणिक्यवर्मा ने राजा से पूछा, "प्रभु, नागवर्मा तथा उसके अनुचर आप को इस बात का विश्वास दिलाने में सफल हो रहे थे कि, राज्यभर में सुख शान्ति की तूती बोल रही है; तब अचानक गोविन्द नामक एक युवक के द्वारा पूछे गये केवल दो सवालों से आप देश की वास्तविकता से कैसे परिचित हो सके? गोविन्द ने अपने पिता के द्वारा जो तीसरा सवाल पूछना चाहा, वह सवाल क्या है? वह सवाल उसने अपने पिता द्वारा पूछने की अनुमति क्यों माँगी? और आपने कहा कि आप वह तीसरा सवाल पूछने का मौका ही नहीं आने देंगे, इसके पीछे आपका उद्देश्य क्या है?"

मन्त्री के ये प्रश्न सुनकर मन्दहास करते हुए राजा बोला, "राज्य में नागवर्मा जो भयानक वातावरण पैदा कर रहा है, उसको देखते हुए गोविन्द ने मुझसे दो सवाल पूछने के बाद संकेत रूप में यह सूचित किया कि अब आगे उसका ज़िन्दा रहना असंभव है। इसके बाद उसका पता न पाकर उसका पिता मेरे दरबार में प्रवेश करके मुझ से यह सवाल करेगा, "मेरा बेटा गोविन्द कहाँ है?" यही उसका तीसरा सवाल है जो मुझसे उसका पिता करनेवाला था। इसके आधारपर मैंने समझ लिया कि मेरे देश में कैसी अराजकता फैली हुई है! इसलिये मैंने गोविन्द को बताया कि तीसरा सवाल करने की आवश्यकता न रहेगी।"

गोविन्द के तीसरे सवाल ने राज्य के लिये अत्यन्त कल्याण का कार्य किया है—इस बात से मन्त्री माणिक्यवर्मा बहुत प्रसन्न हुआ।

माता की सलाह

सुधाम नाम के एक युवक का हाल ही में विवाह हुआ था। बीमारी की वजह से उसका मामा उसकी शादी में न जा पाया। इसलिये मामा की ख़बर करने के ख्याल से सुधाम पड़ोस के गाँव के लिये चल पड़ा जहाँ उसका निवास था।

सुधाम के मामा ने सब से पहले सब के कुशल समाचार पूछे और बोला, "भगवान की कृपा से मेरा स्वास्थ्य अब सुधर गया है। अब बताओ, तुम्हारी नयी गृहस्थी कैसे चल रही है? तुम्हारी पत्नी रसोई और घर के बाकी कामकाज़ों में तुम्हारी माँ का हाथ बँटाती है कि नहीं? सास और बहू की एक दूसरे से पटती है? दोनों एक दूसरे से प्यार करती है? कहीं झगड़ा तो नहीं चलता?"

"मदद करना क्या है मामाजी? वही सारे काम सम्हालती है।" सुधाम ने जवाब दिया

"तब तो इस बुढ़ापे में तुम्हारी माँ को काफ़ी विश्राम मिल गया है। बेचारी, तुम्हारे पिता के स्वर्गवास के बाद न मालूम, तुम लोगों को पाल-पोस कर बड़ा करने में उस ने कैसे कैसे कष्टों का सामना किया है। अब तो वह बड़ी खुशी से अपने दिन काट सकती है।" मामा ने कहा।

सुधाम ने इसपर कुछ कहना चाहा, मगर संकोचवश वह चुप रह गया।

इस बात को भाँप कर मामा बोला, "तुम शायद कुछ कहना चाहते थे। चुप क्यों हो गये? मेरे सामने कुछ छुपाने की ज़रूरत नहीं है। बोलो, आख़िर बात क्या है?"

"जब से बहू ससुराल आ गयी है, तब से माँ कुछ अन्यमनस्का सी रह गयी है। हमेशा खोयी खोयी रहती है। जब-तब गहरी चिंता में डूबी सी दिखाई देती है।" सुधाम ने कहा।

अनीता बिनीवाले

"तुम ने इस का कारण क्यों नहीं पूछा ?"

"मैं तो पूछना ही चाहता था, मगर माँ ने खुद ही बताया। जब बहू तालाब में पानी भरने गयी थी, तब बताया।" सुधाम ने कहा।

मामा थोड़ी देर मौन बैठकर सोचता रहा; और फिर बोला, "क्या तुम्हें वे बातें अब भी याद है ? अगर याद हो तो मुझे एक एक अक्षर, एक एक शब्द और एक एक वाक्य उसी रूप में बता दो।"

"यह बात चार-पाँच दिन पहले ही हुई है। मुझे अच्छी तरह से सब बातें याद है।" सुधाम ने कहा।

"अच्छा ? तो कहो न ?"

"उस दिन सबेरे दस बजे के समय, जब कि मैं पिछवाड़े में था, माँ ने मुझे बुलाया और पूछा, "बेटा, तुम्हारी पत्नी पिछवाड़े में है या तालाब में पानी भरने गयी है ?"

"माँ, अभी तो वह कलसा लेकर गयी, क्या तुमने उस को जाते हुए नहीं देखा ?" मैंने उसे उलटा सवाल किया।

"तब यहाँ आकर बैठ जाओ मेरे पास।" यह कहकर माँ ने मुझे अपने पास बिठाया और समझाना शुरू किया, "बेटे, तुम अपनी पत्नी की खूबसूरती की तारीफ़ उस के मुँह पर न करो।"

"क्यों ? क्या बात है माँ ?" मैं ने पूछा।

"अरे, उसकी आँखें सिरपर चढ़ जायेंगी। और वह तुम्हारी अवहेलना करना शुरू करेगी।" माँ बोली। मैं चुप रह गया इसपर।

फिर माँ ने अपनी बात शुरू की, "सुनो बेटे ! अपनी पत्नी है इसलिये तुम सारी बातें उसके कानों में न डाल देना।"

"इसका क्या परिणाम होगा ?" मैंने माँ से पूछा।

"वह जहाँ तहाँ जाकर घर की सारी बातें खोल देगी।" माँ बोली। मैं सिर हिलाकर चुप रह गया।

"चाहो वह कितनी भी अच्छी सलाह दे दें, मगर तुम उसका बिलकुल पालन न करो।" माँ ने फिर समझाया।

"पालन करने से क्या होगा ?" मैंने पूछा।

"होगा क्या ? वह मुझे इस घर से बाहर निकालने की सलाह भी तुमको दे सकती है

न ?" माँ ने कहा

मैं तो इसपर माँ का चेहरा देखता ही रह गया।

"सुनो, तुम कभी भूल से भी तिजोरी की चाबियाँ उसके साथ मत दे दो।" माँ ने ज़ोर दिया।

"देने से क्या होगा ? तुम्हें डर किस बातका?" मैंने फिर माँ से पूछा।

"अरे पगले, वह एक एक करके सारे रुपये अपने मायके पहुँचा देगी।" माँ ने कहा।

अब मुझ से रहा न गया। मैं ने माँ से पूछा, "माँ ये सारी बातें तुम्हें कैसे मालूम ? मैंने उस से पूछ लिया था।"

"बेटा, जो प्रश्न तुम्हें पूछना चाहिये था, वही तुमने पूछा। मगर तुम्हारी माँ ने इसका क्या दिया ? सुनूँ तो!" मामा ने पूछा।

"अरे, बेटे कहीं माँ से ऐसा सवाल पूछा जा सकता है ? छीः मुँह बन्द करो।" यह कहते माँ उठकर रसोईघर में चली गयी।" सुधाम ने कहा।

इसपर मामा खिलखिलाकर हँस पड़ा, फिर वह गंभीर हो उठा।

सुधाम भी थोड़ी देर अपने मामा के चेहरे की ओर ताकता रहा और बाद में पूछा, "मामाजी, चुप क्यों हो गये!"

"क्या बोलूँ।" मामा ने कहा।

"मैं ने पहले ही पूछा था न ? माँ ये सारी बातें कैसे जानती हैं ? यदि वह नाराज़ हो और उस बारे में आप कुछ जानते हैं तो बताओ न मामाजी?" सुधाम ने दृढ़ स्वर में सवाल किया।

"मैं तो जानता हूँ बेटे ! लेकिन यह सब जानकर तुम्हें क्या फ़ायदा होगा ?" मामा ने पूछा। "इस से मैं माँ की चिन्ता का कारण समझ सकूँगा और उसको समझाबुझाकर उन की शंका और डर को दूर करने के प्रयत्न करूँगा।" सुधाम ने कहा।

"तब तो सुनो। मेरी बहन, जो तुम्हारी माँ है; जब वह नववधू बनकर अपने ससुराल पहुँची, तो उस वक्त उस ने जो महान् कार्य किये थे, वे ही हैं येह सब ? खिल खिलाकर हँसते हुए मामाने कहा।

निरपेक्ष दान
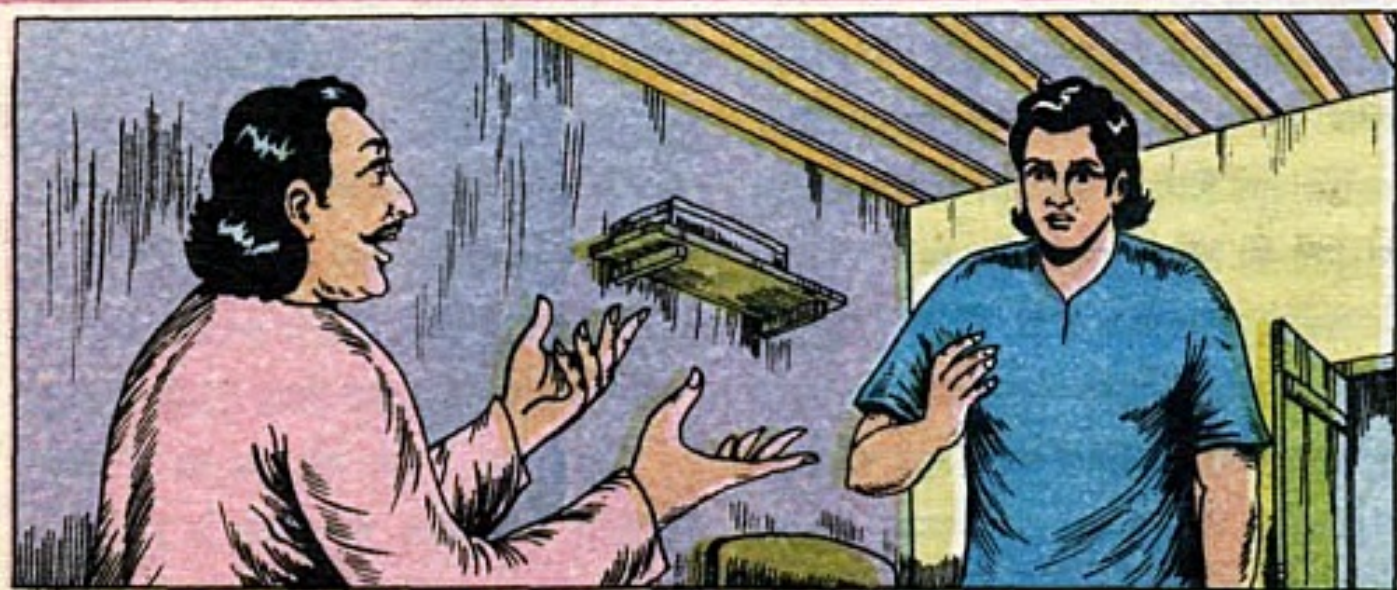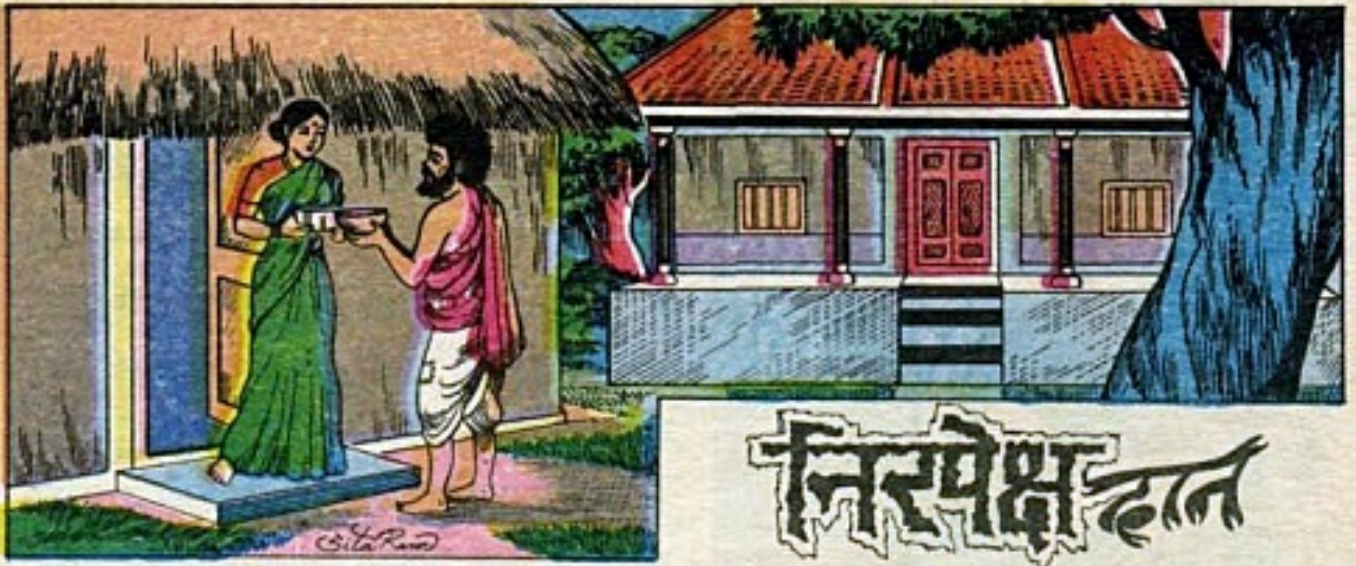
एक गाँव में दो स्त्रियाँ रहा करती थीं । उन में एक स्त्री संपन्न थी, पर थी बड़ी कंजूस । बड़े कठोर हृदयवाली थी वह । किसी को कुछ देते समय उसकी नानी मरती थी। दूसरी औरत ग़रीब थी, लेकिन बड़ी दयालु थी । उसका हृदय मक्खन जैसा कोमल था । वह ग़रीबों की भरसक मदद करती थी । द्वार पर भिखारी आ जाता तो घर में जो कुछ हो, दे देती ।

वे दोनों औरतें अड़ोस-पड़ोस में रहती थीं ।

एक दिन शाम के समय एक भिखारी रास्ते से गुज़रते हुए उस अमीर औरत के घर के सामने रुक गया । उसने दरवाज़े पर दस्तक दी । औरत ने किवाड़ खोलकर भिखारी को देखा और धड़ाम से दरवाज़ा बंद कर दिया । उसके मुँह से कम-से-कम ऐसे शब्द भी न निकले— "भैया, किसी दूसरे घर जाकर भीख माँगो, यहाँ तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा :"

भिखारी दो कदम आगे बढ़ा और उस ग़रीब स्त्री के किवाड़ पर दस्तक दी । उस घर की मालकिन ने किवाड़ खोलकर भिखारी को देखा । दरअसल उसके घर में अपना पेट भरने लायक खाना भी न था । फिर भी वह अन्दर चली गई, रोटी का एक टुकड़ा ले आई और उसे भिखारी के हाथ में थमा कर बोली— "भाई, यह रोटी का टुकड़ा खा लो और उस पर यह छाछ पी लो । चाहो तो आज रात भर इस चबूतरे पर सो सकते हो ।"

भिखारी ने रोटी खा ली, छाछ पी लिया और तब उस ग़रीब औरत से पूछा— " माई, तुम्हें किसी बात का अभाव तो नहीं ? गुज़ारा ठीक चलता है न ?"

उसने कहा— "बेटा, मुझे अधिक-से-अधिक क्या चाहिए ? बस, ज्यों-त्यों गुज़ारा भर हो जाता है ! मुझे अभाव किस बात का ? भगवान

(२५ वर्ष पूर्व चन्दामामा में प्रकाशित एक कहानी)

जो देता है, उस में मुझे संतोष है ।''

''माई, जो देते हैं, उन्हें मिलना भी है ! देखती रहो, तुम सुबह जो काम शुरू करोगी, वह संध्या तक चलता ही रहेगा ।''— कहते हुए भिखारी अपने रास्ते पर चल पड़ा ।

ग़रीब औरत की समझ में नहीं आया कि भिखारी ने जो कुछ कहा, वह क्यों ? इस लिए भिखारी के शब्दों को वह औरत भूल गई ।

दूसरे दिन सुबह वह बिस्तर से उठी । उसने मन में सोचा, चलो एक बार नाप कर देखूँ, बुना हुआ कपड़ा कितना है ? वह अपने हाथ से सूत कातती और फिर कपड़ा बुनती थी । उस कपड़े को बेचकर वह अपना ज़रूरी खर्च चला लेती थी ।

उसने अपने संदूक से कपड़े का थान निकाला और नापने लगी हाथ से— ''एक, दो, तीन...'' उसने कई हाथ नापे, पर कपड़े का अंत ही नहीं हुआ । तब उसे भिखारी की बात याद आई— ''तुम सुबह जो काम शुरू करोगी, वह संध्या तक चलता ही रहेगा— तुम देखती रहो ।'' उस दिन शाम तक वह औरत कपड़ा नापती थी रही । हज़ार के अधिक गज़ कपड़ा उसके हाथ आया । इस तरह उसने जो कपड़ा नाप लिया, घर में उसका ढेर सा लग गया । भिखारी के आशीर्वाद का सामर्थ्य देखकर उसको बड़ा आश्चर्य हुआ ।

गाँवों में बात छिपती थोड़ी है ? दूसरे दिन सबेरे गाँववाले उसके घर पर आ धमके और हर किसी ने दो-दो चार-चार गज़ कपड़ा उस ग़रीब औरत से खरीदा ।

इस प्रकार गाँव के सब लोगों को कपड़ा बेचने पर भी उस औरत के पास इतना कपड़ा बचा रहा जो जीवन भर पहनने के लिए उसे पर्याप्त था ।

सारे गाँव में यह समाचार भी आग की तरह फैला कि एक भिखारी ने उस ग़रीब औरत को आशीर्वाद दिया है । यह खबर पाते ही अमीर पड़ोसन ईर्ष्या से जल उठी । अच्छा मौक़ा हाथ आया था और वह उससे वंचित रह गई । इस बात का उसे बड़ा ही दुख हुआ ।

इस घटना के तीन दिन बाद धनी औरत के मकान पर फिर एक बार उसी तरह किसीने आकर

किवाड़ पर दस्तक दी ।

धनी औरत हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई, उसने किवाड़ खोला । देखती क्या है, सामने भगवान की भाँति वही भिखारी खड़ा है । वह फूला न समायी ।

"तुम आ गये बेटा ? आओ, अन्दर आ जाओ । उस दिन मैं तुम्हारा आतिथ्य न कर पाई, कामों में बहुत व्यस्त थी । सारे काम मुझे स्वयं करने पड़ते हैं न ! कह नहीं सकती उस दिन कैसे खीझी हुई थी । भैंस ने पगही तोड़कर सारे पौधों को खा डाला था । इस लिए मैं तुम्हारी ओर ध्यान नहीं दे सकी ।" यह कहते हुए उसने भिखारी के प्रति अपनी सारी सहानुभूति उंड़ेल दी ।

वास्तव में उसके मन में भिखारी के प्रति ज़रा भी सहानुभूति न थी । उसकी एक मात्र इच्छा थी कि भिखारी ने ग़रीब औरत को जैसे वरदान दिया था, वैसे उसे भी प्राप्त हो ।

धनी औरत ने भिखारी को घर के अन्दर बुलाकर उसे अच्छा खाना खिलाया, मिष्टान्न खिलाये, भिखारी का भोजन समाप्त होने पर बोली— "बेटा, आखिर इस रात में कहाँ सोने के लिए जाओगे ? इसी घर में सो जाना । अच्छी खाट लगा देती हूँ, रूईदार गद्दा बिछा देते हूँ और ओढ़ने के लिए बढ़िया गरम शाल ! सो जाओ यहीं ।"

पर भिखारी ने उसी वक्त वहाँ से चले जाने की सोची । चलते वक्त उस औरत को उद्देश्य कर उसने कहा— "माई, तुम सुबह जो काम शुरू करोगी, वह शाम तक भी पूरा न कर पाओगी ।" यों अशीर्वाद देकर भिखारी वहाँ से चला गया ।

अब धनी औरत की खुशी का कोई ठिकाना न रहा । वह रात भर जागती रही । सबेरे उठने पर वह स्वयं निर्णय न कर पाई कि कौन-सा काम शुरू करने पर अधिक-से-अधिक लाभ हो सकता है । अगर वह दही मथना शुरू करे तो हज़ारों मन मक्खन निकल सकता है, पर दिन भर मथने से हाथ थक जाएँगे । इस लिए यह काम करने से कोई फ़ायदा नहीं है ।

आखिर उसके दिमाग़ में एक बढ़िया विचार आया । उसकी मंजूषा में चार मोहरें हैं । उन्हें निकालकर वह गिनना शुरू कर दें, तो शाम तक लाखों-करोड़ों मोहरें गिनी जा सकती हैं । फिर

संसार में उस से बढ़कर धनी और कौन हो सकता है ?

इस विचार के आते ही उसका मन उछल पड़ा। उसकी नींद पहले से ही हराम हो गई थी। कब सबेरा होगा, इसकी प्रतीक्षा करते हुए पूरब की दिशा में खिड़की की ओर ताकते लेटी रह गई। आखिर मुर्गों ने बांगा दी, सुबह हो गई।

वह अमीर औरत अपनी खटिया से उठी और मंजूषा की ओर चल पड़ी। उसने बस, एक ही कदम आगे बढ़ाया था, कहीं से एक बर्रा उड़ता हुआ आ पहुँचा। उसकी गर्दन पर बैठकर उसने डंक मारा। धनी औरत ने उसको मारना चाहा, इतने में वह उड़कर चला गया। इस पर ग़ुस्से में आकर वह बर्रेको भगाने लगी। इस बीच दूसरे बर्रे ने आकर उसे डंक मारा।

भिखारी का आशीर्वाद कारगर साबित हुआ। धनी औरत को दिन भर बर्रे डक मारने लगे। वह उनका शिकार करती रही। लाखों की तादाद में बर्रे आये और उन्होंने उसे घेर लिया। वह औरत परेशान हो गई। बर्रों के हमलों से बचना उसे मुश्किल हो गया।

शाम तक सारे गाँव में ख़बर फैल गई। गाँव के बालक, युवक व वृद्ध, स्त्रियाँ और पुरुष सभी लोग तमाशा देखने पहुँच गये। वे सब देखना चाहते थे कि आखिरकार भिखारी से प्राप्त किया वरदान किस रूप में परिणत हो रहा है।

धनी औरत ने पिछली सारी रात एक अजब परेशानी में बिताई थी। उससे कहीं अधिक परेशानी में आज का दिन का सारा समय उसे बिताना पड़ रहा था।

अब सूर्यास्त का समय हो गया। बर्रे जैसे आये, वैसे चले भी गये। गाँव के सब लोग भी धीरे धीरे अपने घर चले गये।

धनी औरत को उस गाँव में रहना अब अपमानजनक मालूम होने लगा। उसने उसी दिन एक किराये की गाड़ी ठीक कर ली और अपना सारा सामान उस पर लदवाकर किसी और गाँव के लिए निकल पडी।

ऊँचा अग्नि-पर्वत

अर्जेंटाइना में स्थित अनानकागुवा विश्व के सब से ऊँचे शांत अग्निपर्वत के रूप में प्रसिद्ध है। २२,८३४ फुट ऊँचा यह शान्त अग्नि-पर्वत ही पश्चिम श्रेणियों में सब से ऊँचा पर्वत है।

उड़नेवाला मार्सूप्रियल

फालंजर जाति का मार्सूपियल नामक जानवर अत्यंत कुशलता से उड़ता है। वह अपने आगे के और पीछे के पैरों के बीच बने ढीले चर्म को फैलाकर उड़ान भरता है और सुदूर प्रदेशों में स्थित अन्यान्य स्थानों पर कुशलता के साथ पहुँच जाता है।
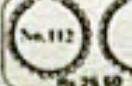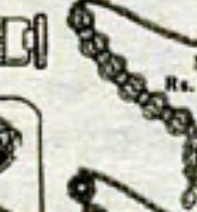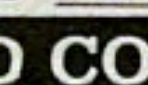
चीन की यलो रिवर (पीली नदी) संसार की अत्यंत कीचड़वाली नदी है। नदी के दोनों किनारों पर फिसलनवाली पीले रंग की कीचड़ के कारण ही इस नदी का यह नाम बड़ा लोकप्रिय बना है।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ दिसंबर १९८८ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।

Pranlal K. Patel

D. N. Shirke

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ अक्तूबर १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए । ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा । ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

अगस्त के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : दुखि की सुनो पुकार ।

द्वितीय फोटो : जीवन में आएगी बहार ।।

प्रेषक : श्री विजयसिंह, S/o श्री राजेसिंह, रेडियो स्टेशन, रोहतक-१२४००१

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चन्दा : रु. ३०-००

चन्दा भेजने का पता :

डॉल्टन एजेन्सीस, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास - ६०० ०२६

अन्य देशों के चन्दे सम्बन्धी विवरण के लिए निम्न पते पर लिखिये :

चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास -६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

Estd. 1947

CHANDAMAMA PUBLICATIONS

188, N. S. K. SALAI, VADAPALANI, MADRAS - 600 026, INDIA.

Phone: 423423, 421778 Grams: "CHANDAMAMA" Telex: 041-347

Publishers:

CHANDAMAMA—English, Hindi, Telugu, Kannada, Bengali, Gujarati, Assamese, Sanskrit; AMBULIMAMA — Tamil; CHANDOBA — Marathi AMBILI AMMAVAN — Malayalam; JAHNAMAMU — Oriya THE HERITAGE — English

प्रिय पाठकगण,

विविध कहानियाँ और कल्पना की उड़ानभरी साहसकथाओं को पेश करने में तो हमें प्रसन्नता है, पर पत्रिका की मूल्य-वृद्धि के बारे में आप से बात करते हुए कष्ट होता है। दरअसल मूल्य बढ़ाने में कारणभूत सभी स्थितियों को हम यथासंभव भूलने की कोशिश करते हैं। काग़ज़ के दाम में असाधारण वृद्धि से आप अपरिचित नहीं हैं, पर खेद है कि उसी के साथ मुद्रण और निर्माण की प्रक्रिया में सर्वत्र वृद्धि हुई है।

इस लिए विवश होकर हमें नवंबर 1988 से 'चंदामामा' का मूल्य बढ़ाना पड़ रहा है। अब उस का दाम होगा प्रत्येक प्रति के लिए 3 रुपये।

पर साथ ही आप के लिए एक सुवार्ता की भी घोषणा है। 'चंदामामा' में आप की सेवा में हम पेश करेंगे एक नया उपहार, जो प्रति मास आप को अधिक आनन्द प्रदान करेगा। यह उपहार हमारे सुचिंतित शोधकार्य का फल होगा। प्रतीक्षा कीजिए।

नित्य आप के सहकार तथा सहानुभूति की अपेक्षा करते हुए आप की सेवा में—

विनीत,

B. Viswanatha Reddi

प्रकाशक